जातिवाद और भगवान् मनु

-आचार्य अग्निव्रत

“ जो सृष्टि को बिना विचारे आस्था व विश्वास वा परम्परा के नाम पर ईश्वर की पूजा करते हैं, वे मानव जाति को अंधविश्वास के गहन अंधकार में धकेलते हैं और जो बिना विचारे अहंकारवश ईश्वर की सत्ता को नकारते हैं, वे मानव को स्वच्छन्द भोगवादी बनाकर पशु से भी अधम बनाते हैं

इधर हमारा वैदिक विज्ञान दोनों को ही सत्य मार्ग पर लाकर मानव को वास्तव में मानव बनाता है। वैदिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान का विरोधी नहीं बल्कि आधुनिक विज्ञान की वास्तविक एवं अनसुलझी समस्याओं का समाधान करने में सहायक है।

—आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

ओ३म्

जातिवाद और भगवान् मनु

लेखक

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

सम्पादकद्वय

मधुलिका आर्या एवं विशाल आर्य

(उपाचार्या एवं उपाचार्य)

वैदिक एवं आधुनिक भौतिकी शोध संस्थान

द वेद साइंस पब्लिकेशन

भीनमाल (राज.)

प्रथम संस्करण, 2022

आश्विन शु. १०, विक्रम संवत् २०७९, विजयादशमी
दिनांक : 05.10.2022

संख्या : 2000

डिजाइनिंग आदि : विशाल आर्य

मूल्य : **₹120/-**

प्रकाशक : **द वेद साइंस पब्लिकेशन**
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम, भीनमाल
जिला–जालोर (राजस्थान) – 343029

वेबसाइट : www.thevedscience.com, www.vaidicphysics.org
ईमेल : thevedscience@gmail.com
सम्पर्क सूत्र : 9530363300, 9829148400

सम्पादकीय

वर्तमान समय में देश अनेक गम्भीर समस्याओं से ग्रस्त है, उनमें से एक समस्या है– जातिवाद। इस जातिवाद के कारण हमारे देश की बहुत हानि हुई है और निरन्तर होती ही जा रही है। जो देश कभी संसार में अपने चरित्र, शिक्षा, शासन आदि की दृष्टि से आदर्श माना जाता था, जिसके विषय में स्वयं भगवान् मनु ने कहा है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ [मनु. 2.20]

अर्थात् पृथिवी पर रहने वाले सभी मनुष्य इस देश के विद्वानों से आचरण अर्थात् कर्त्तव्यों की शिक्षा ग्रहण करें।

आज भगवान् मनु का वही विश्वविख्यात देश जाति–व्यवस्था जैसे अभिशाप के कारण विखण्डित होता जा रहा है। देश के नीति निर्धारकों के पास इस समस्या का कोई स्थायी समाधान दिखाई नहीं देता। कुछ देशद्रोही व विधर्मी लोग इसको बढ़ाने के लिए निरन्तर नयी–2 योजनायें बना रहे हैं। **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्...पद्भ्याꣳ शूद्रोऽजायत'** इस मन्त्र के वास्तविक अर्थ को न समझकर और मिथ्या अर्थ को प्रचारित करके विधर्मी लोग आग में घी डालने का कार्य कर रहे हैं।

दूसरी ओर प्राचीन काल से चली आ रही भगवान् मनु प्रोक्त वैदिक वर्ण–व्यवस्था, जो योग्यता व कर्म पर आधारित थी, जिसके अनुसार ही यहाँ की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था चलती थी और जिसके कारण ही आर्य्यावर्त्त (भारत) में सुख व शान्ति का वातावरण था। अज्ञानतावश उस आदर्श वर्ण–व्यवस्था को न समझने अथवा उसके विकृतरूप का अधिक प्रचार होने के कारण अनेक संगठन भगवान् मनु के विरोधी बन गये।

इन सबका मूल कारण है– वेदमन्त्रों के यथार्थ स्वरूप को न जानना। इन सब पर विचार करने के उपरान्त पूज्य आचार्यश्री ने '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् ...**' मन्त्र का वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक अर्थ संसार के समक्ष लाने का निर्णय लिया। यह लघु पुस्तिका मूलरूप से उपर्युक्त वेद–मन्त्र पर आधारित है। इसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा कृत भाष्य की आधिभौतिक दृष्टि से व्याख्या भी की गयी है। इसके साथ ही वर्ण–व्यवस्था पर उठने वाली अनेक शंकाओं का समाधान भी इस पुस्तक में किया गया है।

पुस्तक के अन्त में आरक्षण, जातिवाद व निर्धनता का स्थायी एवं सर्वोत्तम समाधान दिया गया है। मेरी सहधर्मिणी श्रीमती मधुलिका आर्या ने इस पुस्तक के सम्पादन और ईक्ष्यवाचन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, एतदर्थ मैं उन्हें धन्यवाद ही दे सकता हूँ। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस पुस्तक को आद्योपान्त गम्भीरतापूर्वक पढ़ें और वर्ण–व्यवस्था के यथार्थ स्वरूप से समाज को अवगत कराने का प्रयास करें, जिससे यह देश इस समस्या से उभर कर पुनः उसी महान् आदर्श की ओर बढ़ सके।

इसी आशा के साथ...

–विशाल आर्य

* * * * *

भूमिका

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी माना जाता है और ईश्वर ने उसे बनाया भी सर्वोत्तम ही है। यों तो इस सृष्टि में लाखों प्रकार के प्राणी होते हैं, परन्तु मनुष्य जैसा मननशील प्राणी अन्य कोई नहीं होता और यदि कोई परग्रही प्राणी अथवा अन्य गैलेक्सियों में रहने वाला प्राणी मननशील है, तो वैदिक दृष्टि से उसे भी मनुष्य ही कहा जाएगा। महर्षि यास्क ने मनुष्य पद का निर्वचन करते हुए लिखा है–

मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति (निरुक्त)

अर्थात् जो विचार करके कार्य करता है, वह मनुष्य कहलाता है।

यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि अनेक चोर, डाकू भी सोच विचार कर ही चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं, क्योंकि बिना विचारे और बिना योजना के वे अपने इन दुष्कर्मों में भी सफल नहीं हो सकते, तब क्या वैदिक दृष्टि से इन्हें भी मनुष्य कहा जाए? इसी प्रश्न का समाधान करने के लिए ऋषि दयानन्द ने लिखा–

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए। (आर्यसमाज का पाँचवाँ नियम)

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जो प्राणी सत्य और असत्य को विचार करके ही अपने सभी कार्यों का सम्पादन करता है और इस प्रकार उसकी जीवनशैली ही पूर्णतया सत्य पर आधारित होती है, उस प्राणी को ही मनुष्य कहते हैं। अब यहाँ एक अन्य प्रश्न यह भी है कि सत्य क्या है? कुछ लोगों का ऐसा मत है कि सत्य निरपेक्ष नहीं होता, वस्तुतः यह भ्रम है, परन्तु सत्य को जानना इतना सहज भी नहीं होता। इसी को देवर्षि नारद ने इस प्रकार कहा है–

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्॥
(महाभारत शा.प.। मो.ध.प.। अ.269)

योगदर्शन का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास ने भी कहा है–

सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे। यथा दृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति। परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता, सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय। (योगदर्शन 2.30)

इन दोनों ही प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब कोई प्राणी आत्मा, मन और वाणी को संगत करते हुए बोलता है अर्थात् इनमें परस्पर कहीं भी असंगति वा विरोध नहीं होता है, साथ ही वह सभी प्राणियों के हित में भी होता है, वही सत्य कहलाता है। यहाँ केवल सत्य बोलना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि तदनुकूल आचरण का होना भी अनिवार्य है। इसी को वेद ने इस प्रकार कहा है–

स्वेन क्रतुना संवदेत।

ध्यान रहे कि मन, वाणी और कर्म का सन्तुलन तो सृष्टि के सभी प्राणियों व पागल व्यक्तियों में भी देखा जाता है, क्योंकि वे कभी झूठ नहीं बोलते, परन्तु उनका बोलना वा करना सबके अथवा किसी के भी हित में हो, इसकी सम्भावना बहुत कम होती है। इसलिए इन्हें सत्यवक्ता और सत्य पर आचरण करने वाला नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के गुण इस प्रकार निश्चित होते हैं–

1. बोलते समय आत्मा, मन, बुद्धि एवं वाणी सबकी पूर्ण संगति होनी चाहिए अर्थात् आत्मा, बुद्धि वा मन के प्रतिकूल बोलना असत्य है।
2. इन सबकी संगति के साथ उनके सभी कर्म भी उसी अनुसार होने

चाहिए।

3. उनके विचार, उनके वचन और उनके सभी कर्म सभी प्राणियों के लिए हितकारी होवें और जो कर्म उनके व्यक्तिगत हित के लिए होवें, वे भी किसी अन्य प्राणी के लिए अहितकारी कदापि न होवें।

इन तीन कसौटियों पर जो खरा उतरे, वही मनुष्य कहलाता है। केवल मनुष्य शरीरधारी मात्र होना मनुष्यता का लक्षण नहीं है। आज संसार में सबसे बड़ी त्रासदी कोई है, तो मनुष्यता का घोर अभाव ही है। परमात्मा ने तो सृष्टि रचकर मानो मनुष्य को कहा–

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः॥ [ऋग्वेद 9.62.27]

अर्थात् हे मनुष्य! ये सभी लोक–लोकान्तर तेरे लिए ही ठहरे हुए हैं और नदियाँ एवं सागर भी तेरे लिए ही बहते हैं। ऐसे प्राणी को 'आर्य' भी कहा गया है और आर्य की परिभाषा करते हुए महर्षि यास्क ने कहा है–

आर्य ईश्वरपुत्रः

अर्थात् जो ईश्वर की सभी आज्ञाओं का पूर्ण रूप से पालन करता है, वही आर्य कहलाता है और उस ईश्वर की आज्ञा क्या है? वह भी वेद स्पष्ट करता है–

मनुर्भव

अर्थात् मनुष्य बनो। अन्यत्र कहा–

अहं भूमिम् अददाम आर्याय

अर्थात् मैंने यह भूमि आर्य के लिए दी है। इस प्रकार आर्य एवं मनुष्य दोनों पद समानार्थक सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वेद की दृष्टि में सर्वहितैषी, सत्यपालक मनुष्यों को ही आर्य कहा गया है और आर्यों को ही सृष्टि के संसाधनों का उपभोग करने का अधिकारी बताया गया है। हिंसक, चोर, मिथ्यावादी, छली-कपटी और लम्पटता आदि दोषों से युक्त मनुष्य शरीरधारियों को परमात्मा प्रदत्त संसाधनों के उपभोग का अधिकार नहीं है। इस प्रकार धरती के सभी मनुष्य शरीरधारी प्राणी यदि वास्तव में मनुष्य बन जाएँ, तो इस धरती पर किसी भी प्राणी को अकारण दुःख नहीं होगा।

वस्तुतः परमेश्वर ने इस सृष्टि को सबके हित सम्पादन (सृष्टि के धर्माधारित भोग और मोक्ष) के लिए ही बनाया है। ईश्वर ने प्रारम्भ में अत्यन्त शुद्ध और स्वस्थ वायु, पवित्र जल, पोषक तत्त्वों से भरपूर शुद्ध भूमि, अनिष्ट विकिरणों से रहित आकाश, शुद्धतम मनस्तत्त्व और इन सबसे बने हुए सुन्दर, पूर्ण स्वस्थ और पवित्र वनस्पतियाँ और शरीर हमें प्रदान किए थे। किसी को किसी भी प्रकार का कोई भी दुःख होवे, ऐसे कोई भी कारण इस पृथिवी पर विद्यमान नहीं थे, क्योंकि उस समय सभी मनुष्यधारी प्राणी पृथिवी पर जन्मे ही थे और सच्चे अर्थों में वे मनुष्य ही थे, परन्तु करोड़ों वर्ष पश्चात् आज इस धरती की क्या दुर्दशा है, यह कौन नहीं जानता? तीनों प्रकार के दुःखों- आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तथा सभी प्रकार के दुर्गुणों का इस पृथिवी पर सम्पूर्ण ताण्डव दिखाई दे रहा है।

यों तो विश्व के सभी देशों में अनेक समस्याएँ हैं, परन्तु उन सबका कारण एक ही प्रतीत होता है कि हमने ईश्वरीय व्यवस्थाओं का पालन नहीं किया। सभी प्राणियों ने ईश्वर प्रदत्त अपने धर्म (स्वभाव) को नहीं छोड़ा। वे जब से इस धरती पर उत्पन्न हुए हैं, तब से अपने-अपने धर्म की मर्यादा का शत-प्रतिशत पालन कर रहे हैं, परन्तु धरती के सर्वश्रेष्ठ प्राणी इस मनुष्य ने अपनी सभी मर्यादाओं को पूर्णतः छिन्न-भिन्न कर दिया है। मनुष्य उन मर्यादाओं से भी गिर चुका है, जो ईश्वर ने पशु-पक्षियों के लिए निर्धारित की हुई हैं, इसी कारण सम्पूर्ण पृथिवी का प्रतिपालक यह मनुष्य सम्पूर्ण पृथिवी

और उस पर रहने वाले सभी प्राणियों और वनस्पतियों के दु:ख और विनाश का कारण बन गया है। कभी देवराज इन्द्र ने महान् सम्राट् मान्धाता से कहा था–

निर्मर्यादान् नित्यमर्थे निविष्टानाहुस्तांस्तान् वै पशुभूतान् मनुष्यान्।

(महाभारत शा.प.। रा.ध.अ.प.। अ.65)

अर्थात् मर्यादाविहीन मनुष्य पशु के समान है, परन्तु पशुओं की मर्यादा से भी नीचे गिर जाने के कारण मिथ्यावादी, हिंसक, छली–कपटी, चोर आदि को पशु–समान बताना, वस्तुत: पशुओं का भी अपमान करना है।

यों तो विश्व में सांकेतिक रूप से साम्प्रदायिकता तथा मुख्य रूप से अनेक समस्याएँ हैं, लेकिन इस पुस्तक में हम केवल भारत के सन्दर्भ में जातिवाद की समस्या तक ही अपने विचार सीमित रखेंगे। आज मानवतारूपी माँ के शरीर का हर अंग घायल है। इस पर असंख्य घाव हैं, परन्तु हम जातिवाद के एक घाव पर विचार करेंगे। आज इस देश में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध, वामपन्थी आदि नाना प्रकार के व्यक्ति रहते हैं। वे अपनी–अपनी पहचान को बनाये रखने के लिए आतुर दिखाई देते हैं। हाँ, हिन्दुओं में ऐसी कोई आतुरता दिखाई नहीं देती। वे बिना पेंदे के लोटे के समान किसी भी स्वार्थ अथवा भय के कारण मन चाहे उधर लुढ़क जाते हैं। इनमें से कोई भी अपने को भारतीय नहीं कहता और न उसे भारतीयता से कोई प्रेम ही है, फिर कोई अपने को आर्य अथवा मनुष्य कहेगा, इसकी तो दूर–दूर तक भी सम्भावना नहीं है। कभी इस धरती पर आर्य अर्थात् मनुष्य थे, परन्तु अब कोई आर्य (मनुष्य) दिखायी नहीं देता। कोई ईश्वर वा प्रकृति के नियमों के अनुकूल चलता हुआ दिखाई नहीं देता।

कल्पना कीजिए हम किसी वाहन का प्रयोग, उसकी तथा यातायात के नियमों की समुचित जानकारी के बिना करेंगे, तो क्या कभी सुखद और सुरक्षित यात्रा कर सकेंगे? क्या कोई विद्युत् के अनेक उपकरणों की समुचित

जानकारी के बिना, उनका स्वच्छन्दता से प्रयोग करके अपने जीवित रहने की कल्पना कर सकता है? कदापि नहीं। इसी प्रकार जब तक हम अपने शरीर और ब्रह्माण्ड के साथ-साथ स्वयं तथा परमात्मा का समुचित ज्ञान प्राप्त करके आर्य अर्थात् मनुष्य नहीं बनेंगे, तब तक सृष्टि को भोगने की असीम स्वच्छन्दता हमारे साथ-साथ इस सृष्टि के विनाश का भी कारण बनेगी और बन भी रही है। इसलिए आज का वैज्ञानिक और शीर्ष पूँजीपति भी चन्द्रमा पर भागने की तैयारी कर रहा है, तो कोई मंगल पर भागने की तैयारी कर रहा है और ब्रिटिश वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग तो मरते-मरते इस मनुष्य को किसी अन्य गैलेक्सी में शरण लेने का परामर्श दे गए।

इस संसार में उपर्युक्त जो भी सम्प्रदाय हैं, वे सभी वेद की कुछ शिक्षाओं को लेकर और साथ में अपनी कुछ मनगढ़न्त कल्पनाओं को मिश्रित करके प्रचलित हुए हैं, इसमें से हिन्दू कोई सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि यह विभिन्न सम्प्रदायों का मिश्रित रूप है, जो इस आर्य्यावर्त्त (भारत) को अपनी भूमि मानता है और स्वयं को सदैव से यहीं का निवासी मानता है। इस कारण यह भारतीय महापुरुषों, देवों एवं ऋषियों और इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों तथा ईश्वरीय ज्ञान वेद पर कुछ श्रद्धा तो रखता ही है। सिक्ख मत के आधार ग्रन्थ 'गुरुग्रन्थ साहिब' में भी वेद को ईश्वरीय ज्ञान कहकर उसी की प्रशंसा की है। बौद्धों के 'धम्मपद' में भी वेद, सच्चे ब्राह्मण और आर्य की बहुत प्रशंसा की गई है। मूलरूप से अहिंसा पर ही आधारित जैन मत भी अनेक अर्थों में वेद के निकट ही है। उधर ईसाई, इस्लाम, यहूदी आदि मत अपने-अपने ग्रन्थों से पूर्व विश्व की स्थिति, भाषा और ज्ञान के मूल स्रोत और सृष्टि पर पूर्ण विचार किए बिना ही अज्ञानतावश स्वयं को वेदविरोधी मान बैठे हैं।

आज संसार की स्थिति यह है कि जो वेद के प्रशंसक हैं और जो वेद के विरोधी हैं, जिनमें वामपन्थी भी सम्मिलित हैं, इनमें कोई भी वेद के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता। हमारी दृष्टि में किसी भी ग्रन्थ अथवा व्यक्ति के स्वरूप को पूर्ण जाने बिना उसकी प्रशंसा अथवा निन्दा दोनों ही करना उचित

नहीं है और इस अनौचित्य के आधार पर ही वर्ग-संघर्ष, रक्तपात और आतंकवाद शताब्दियों से चलता आ रहा है और निरन्तर नये-नये स्वरूपों में बढ़ता जा रहा है। इनमें से कोई भी यह जानने का प्रयास नहीं करता कि सम्पूर्ण सृष्टि सूक्ष्म कणों, तरंगों व रश्मियों से बनी है। सभी के ग्रन्थ यह भी कहते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि को बनाने वाला एक चेतन सर्वशक्तिमान् कर्त्ता है। इसी प्रकार हम सबके शरीर भी एक ही प्रकार की सामग्री से उसी चेतन सत्ता ने बनाए हैं।

हम सबका आत्मा, जो हमारा निजस्वरूप है, भी पृथक्-पृथक् होते हुए भी स्वरूप से एक समान है, फिर पृथक्-पृथक् मजहब और सम्प्रदाय कैसे बन गए? ईश्वर ने तो सबको मनुष्य शरीर ही दिया था, परन्तु हम हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी और वामपन्थी इन सब में कैसे बँट गये? ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि रचने के साथ-साथ ही उसको सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि को समझकर सभी प्राणियों के प्रति उचित व्यवहार और इस सृष्टि का भी उपयोग करने का ज्ञान वेद के माध्यम से दिया, यह ज्ञान भी मनुष्य के लिए पूर्ण और पर्याप्त था, क्योंकि ईश्वर भी पूर्ण और सर्वज्ञ ही होता है, अल्पज्ञ और अपूर्ण कदापि नहीं।

वास्तव में ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता भी मनुष्य की प्रथम पीढ़ी को ही होती है। उसके पश्चात् तो परम्परा से यह ज्ञान चलता रहता है। एक बात यह भी सुनिश्चित करने योग्य है कि पूर्णपुरुष परमात्मा के पूर्णज्ञान में कभी भी संशोधन अथवा परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं रहती। यह आवश्यकता तो अल्पज्ञ मनुष्यों के विचार एवं ग्रन्थों में ही होती है और हम ऐसा नहीं समझते कि किसी भी सम्प्रदाय वाला अपने इष्ट देव, उसे भले ही कोई भी नाम क्यों न दे, को कभी अपूर्ण वा अज्ञानी कहेगा। ऐसी स्थिति में एक धर्म के स्थान पर विभिन्न मत-मतान्तरों के द्वारा मानवता का खण्ड-2 होना कैसी विडम्बना है? यह विखण्डन यहीं तक नहीं रुका, बल्कि यह विभिन्न मजहबों के अन्दर भी अनेक कथित जातियों तक फैलता गया और

फैलता जा रहा है। इसमें सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति हिन्दुओं की है, जहाँ विभिन्न कथित जातियाँ और उनकी शाखा-प्रशाखाएँ फैलकर एक-दूसरे को परस्पर घोर शत्रु बना रही हैं। कहने को तो कोई भी अपने को हिन्दू कह लेता है, परन्तु उसके अन्दर किसी कथित जाति का अहंकार वा बन्धन बैठा होता है, जो दूसरे से स्वयं को सदैव पृथक् ही मानता है।

कोई अपने पूर्वजों के नाम पर ही अहंकार करते हुए स्वयं को अकारण ही ज्येष्ठ व श्रेष्ठ मानने लगता है और दूसरों को निम्न मानने लग जाता है, फिर भले ही अन्य लोग वर्तमान में उससे श्रेष्ठ क्यों न हों। इसका परिणाम यह होता है कि अन्य लोग देश के महापुरुषों को भी किसी वर्ग विशेष का पूर्वज मानकर उनसे घृणा करने लगते हैं, तो कहीं महापुरुषों पर ही अपने-2 पूर्वज होने का दावा करके वर्ग-संघर्ष को जन्म देते हैं। कोई देश के महापुरुषों को सम्पूर्ण देश का महापुरुष मानने के लिए तैयार नहीं, तो स्वयं को भारतीय अथवा हिन्दू भी मानने के लिए तैयार नहीं। कितने शोक की बात है कि जिनके पूर्वज कभी आर्य थे, वे आज 'हिन्दू' कहलाने लगे और अब हिन्दू भी नहीं, बल्कि नाना कथित जातियों से पहचाने जाने लगे।

योग्यता व कर्म पर आधारित जो वर्ण-व्यवस्था भगवान् मनु ने संसार के कल्याण के लिए स्थापित की थी, वही वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित होकर संसार के लिए, विशेषकर भारत के लिए अभिशाप बन गई। यह सब कैसे हुआ? इसकी चर्चा हम आगे में करेंगे।

* * * * *

...पद्भ्या ॐ शूद्रोऽजायत

आज भारत में, विशेषकर हिन्दू समाज में जन्मना जातिव्यवस्था नस-नस में विष की भाँति व्याप्त हो गयी है। वैसे तो जाति जन्म से ही होती है, जैसे- मनुष्य, गौ, भेड़, बकरी आदि। उधर वर्ण, कर्म व योग्यता पर ही आधारित होता है, जो आज नहीं रहा। वर्ण-व्यवस्था के घोर विरोधी कथित दलित विचारक वेदोक्त वर्णव्यवस्था की यथार्थता को जाने बिना उसकी, उसके प्रवर्तक भगवान् मनु एवं वेदों की कड़ी निन्दा करते देखे जाते हैं। वस्तुतः वे इसके लिए पूर्णतः दोषी भी नहीं हैं, क्योंकि वर्णव्यवस्था के पोषक भी सदियों से इस व्यवस्था की यथार्थता व वैज्ञानिकता को भूलकर एक वर्ग विशेष पर अत्याचार करते रहे हैं। वर्णव्यवस्था विरोधी और समर्थक दोनों ही इस व्यवस्था का मूल स्रोत एक वेद मन्त्र को मानते हैं। दुःख इस बात का है कि दोनों ही पक्ष उस मन्त्र का वास्तविक अर्थ नहीं समझते। वह विवादित माना जाने वाला मन्त्र इस प्रकार है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ॐ शूद्रोऽजायत॥

[यजुर्वेद 31.11, अथर्ववेद 19.6.6, ऋग्वेद 10.90.12]

इस मन्त्र के अर्थ को न समझ पाने के कारण हिन्दू समाज का जिस प्रकार विनाश हुआ है, वह बहुत दुःखद है। इसके आधार पर ही दुष्ट लोगों के द्वारा मनुस्मृति में अनेक श्लोकों को मिलाकर छुआछूत और जातिवाद का विष वमन किया गया। मनुस्मृति मानव जाति का सबसे प्रथम धर्मशास्त्र है, जो संसार के प्रथम राजा भगवान् मनु के द्वारा रचा गया। इसी कारण वेद के पश्चात् इस पृथ्वी पर मानवमात्र के लिए यही सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा। इसी का लाभ उठाकर कुछ समाज कण्टकों ने इस ग्रन्थ में मनमाना प्रक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। शूद्र को वेदमन्त्र पढ़ने, बोलने व सुनने के अधिकार से पूर्णतः वञ्चित कर दिया। इसका उल्लंघन करने पर शूद्र के गले

को काटने और कानों में सीसा पिघलाकर डालने के क्रूर दण्ड का विधान किया गया।

मनुस्मृति में मिलाए हुए इन श्लोकों को मनु के वचन मानकर अन्य कुछ शास्त्रों अथवा उनके भाष्यकर्त्ताओं ने भी ऐसी बीभत्स व्यवस्था को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया। इससे भारत की एक-चौथाई जनसंख्या वेद और ऋषियों के नाम से ही भयभीत होने लगी और उनसे घृणा करने लगी। इन लोगों ने केवल शूद्र को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण नारी जाति को भी वेद पढ़ने के अधिकार से वञ्चित कर दिया। इस विषय में कुछ लोगों का यह कहना है कि शास्त्रों में भले ही ऐसा लिखा है, परन्तु भारतीय समाज में ऐसा कभी नहीं हुआ, उनका यह कहना हास्यास्पद है। छुआछूत के रोग की उपेक्षा घातक है। वास्तव में ऐसे बचकाने बयान देने वालों को शास्त्रों की कोई समझ नहीं है, इस कारण वे 'शास्त्रों में प्रक्षेप भी हुए हैं' ऐसा कहने का साहस नहीं कर पाते। वस्तुतः वे शास्त्रों को महत्त्व नहीं देते, बल्कि अपनी मिथ्या मान्यताओं को ही प्रभावी मानते हैं, यह राष्ट्र के लिए बहुत घातक है। अब हम जानने का प्रयास करते हैं कि इस मन्त्र के कारण ऐसा क्यों हुआ?

इसका कारण यह रहा कि अनेक वेद भाष्यकारों ने भी इस मन्त्र के अर्थ को समझने में भारी भूल की है। मैं तो यह भी कहना चाहूँगा कि ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त सम्भवतः कोई भी वेद भाष्यकार वेद के निकट भी नहीं पहुँच पाया। सर्वप्रथम हम सबसे प्रसिद्ध माने जाने वाले वेद भाष्यकार आचार्य सायण का भाष्य यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

'अस्य प्रजापतेर्ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषो मुखमासीत्। मुखादुत्पन्न इत्यर्थः। योऽयं राजन्यः क्षत्रियत्वजातिमान्पुरुषः स बाहू कृतः। बाहुत्वेन निष्पादितः। बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः। तत्तदानीमस्य प्रजापतेर्यदुरू तद्रूपो वैश्यः सम्पन्नः। उरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः। तथास्य पद्भ्यां पादाभ्यां शूद्रः शूद्रत्वजातिमान्पुरुषोऽजायत।'

अर्थात् प्रजापति ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, बाहु से क्षत्रिय उत्पन्न हुए, जङ्घाओं से वैश्य उत्पन्न हुए और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। पद्मभूषण डॉ. श्रीपाद सातवलेकर ने अथर्ववेद भाष्य में इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

(अस्य मुखं ब्राह्मणः) इस पुरुष का मुख ब्राह्मण- ज्ञानी है, (राजन्यः बाहू अभवत्) क्षत्रिय इसके बाहू हुए हैं, (मध्यं तत् अस्य यत् वैश्यः), इसका मध्यभाग वैश्य है, (पद्भ्यां शूद्रः अजायत) पाँव के लिए शूद्र हुआ है।

पहले हम आचार्य सायण के भाष्य पर विचार करते हैं कि किस प्रकार उन्होंने निराकार ब्रह्म को साकार बनाकर, उसके विभिन्न अङ्गों से किस प्रकार सारे मनुष्य उत्पन्न कर दिये। पण्डित सातवलेकर का भाष्य अपेक्षाकृत अधिक उचित है। यहाँ अथर्ववेद में कुछ पाठभेद है, जहाँ 'ऊरू' के स्थान पर 'मध्यम्' पद का प्रयोग है। इन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों की तुलना क्रमशः परमात्मा के मुख, बाहु, उदर/जङ्घा और पैरों से की है। **इस पर आपत्ति यह की जाती है कि शूद्र की तुलना पैरों से और ब्राह्मण की तुलना मुख से क्यों?**

इस विषय में हम अपना तथा ऋषि दयानन्द का भाष्य प्रस्तुत करने से पूर्व यह कहना चाहते हैं कि ब्राह्मण आदि वर्ण हैं क्या? वस्तुतः वर्ण वह है, जिसका व्यक्ति अपने कर्म व योग्यता के अनुसार वरण करता है। वर्ण का उसके माता-पिता आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वर्णव्यवस्था के प्रथम प्रस्तोता भगवान् मनु के अनुसार मनुष्य के जीवन में वर्ण परिवर्तन भी हो सकता है। इस विषय में भगवान् मनु का कथन है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ [मनु. 10.65]

अर्थात् यदि शूद्र वर्णस्थ व्यक्ति ब्राह्मण की योग्यता अर्जित कर ले, तो ब्राह्मण हो जाता है और यदि ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति अपने कर्म और योग्यता से गिरकर शूद्र के समान योग्यता वाला रह जाए, तो वह शूद्र हो जाता है। इसी

प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रियादि वर्णों का भी अन्य वर्णों में परिवर्तन हो सकता है। उधर गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

यहाँ भी ब्राह्मण आदि वर्णों का विभाजन गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर ही माना है, जन्म के आधार पर कदापि नहीं। गुण, कर्म व स्वभावों की विवेचना भी भगवान् मनु ने इस प्रकार की है—

1. ब्राह्मण के कर्म—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ [मनु. 1.88]

अर्थात् वेद का अध्ययन व अध्यापन, यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना, ये छह ब्राह्मण के कर्म हैं।

यहाँ ब्राह्मण की मुख्य योग्यता व कर्म वेद का पढ़ना और उसे पढ़कर पूर्ण विद्वान् बनकर अन्यों को वेद पढ़ाना है। जो भी इस योग्यता को प्राप्त कर ले और उस योग्यता के अनुसार अपना जीवन बना ले, वही ब्राह्मण होता है। इस प्रकार आध्यात्मिक और पदार्थ विद्या का वैज्ञानिक योगी ब्राह्मण कहलाता है। यहाँ ब्राह्मण के यजन-याजन कर्म भी अनिवार्यतः बतलाये गये हैं। इसका अर्थ यह है कि ब्राह्मण को शिल्प विज्ञान में निष्णात, त्यागी-तपस्वी, समाज को संगठित करने में कुशल होना चाहिए और समाज के लोगों को भी इसी प्रकार का आदेश करने वाला होना चाहिए। यहाँ इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि उस व्यक्ति के माता-पिता, दादा-दादी वा नाना-नानी किस वर्ण के हैं। जो समाज में संगठन, सहकार व समरसता का संचार करने में सक्षम नहीं होता अथवा ऐसा करने का प्रयास नहीं करता अथवा अर्थ आदि में आसक्त होता है, वह उच्च कोटि का विद्वान् होते हुए भी ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिए मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में बीभत्स प्रक्षेप

करने वाले संस्कृत भाषा वा व्याकरण के महान् पण्डित होते हुए भी ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते, बल्कि वे प्रच्छन्न ब्राह्मण-विरोधी सिद्ध होते हैं। ऐसे लोग कौन थे, यह पृथक् अन्वेषण का विषय है।

2. क्षत्रिय के कर्म—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ [मनु.1.89]

अर्थात् प्रजाओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदाध्ययन करना और विषयों में अनासक्ति ये संक्षेप से क्षत्रिय के कर्म हैं।

इसका अर्थ यह है कि क्षत्रिय का भी अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह सभी विद्याओं में निष्णात हो, क्योंकि अध्यात्म एवं पदार्थ विद्याओं में निष्णात हुए बिना कोई भी राजा अपनी प्रजा का पालन व रक्षण नहीं कर सकता। इसके साथ ही जो राजा जितेन्द्रिय नहीं होगा, वह भी कभी प्रजा का पालन व रक्षण नहीं कर सकता। ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय भी याज्ञिक होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि क्षत्रिय भी शिल्प-विज्ञानी, त्यागी-तपस्वी, राष्ट्रहित में विद्वानों का उचित उपयोग करने वाला तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता वाला होना चाहिए। यहाँ भी क्षत्रिय का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि योग्यता और आचरण से ही क्षत्रियत्व सिद्ध होता है, क्योंकि क्षत्रिय प्रजा का रक्षक होता है, इसलिए अन्याय के प्रति संघर्ष करना, पक्षपात रहित न्यायादि करना, युद्ध-कौशल और युद्धनीति में निपुण होना, बलवान् और शूरवीर होना आदि भी उसके स्वाभाविक गुण होने चाहिए।

3. वैश्य के कर्म—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ [मनु.2.90]

अर्थात् पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदाध्ययन करना, व्यापार

करना, ब्याज लेना और कृषि करना ये वैश्य के कर्म हैं।

यहाँ भी यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय की भाँति वैश्य भी वेदविद्या अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान में निष्णात होना चाहिए। इनमें भी पशु विज्ञान, कृषि विज्ञान, अर्थशास्त्र, वित्तीय एवं व्यापार प्रबन्धन आदि विषयों में विशेष निष्णात होना चाहिए। यह भी उपर्युक्त दोनों वर्णों की भाँति याज्ञिक अर्थात् शिल्पविज्ञानी, दानी और समाज व राष्ट्र के संगठन की भावना रखने वाला होना चाहिए। इन सबके बिना वह पशुपालन, रक्षण, कृषि एवं व्यापार उचित रीति से कभी नहीं कर सकता। यह सम्पूर्ण राष्ट्र की आर्थिक रीढ़ होता है। यहाँ भी जन्म का कोई महत्त्व नहीं हैं, बल्कि सभी कुछ योग्यता और आचरण पर ही निर्भर है।

ज्ञातव्य- ये तीनों वर्ण विशेषकर विद्वानों एवं बुद्धिमानों के हैं, क्योंकि उच्च कोटि की बुद्धि वाले ही इन उपर्युक्त सभी कार्यों को करने में सक्षम होते हैं। इसी कारण वेदविद्या का पढ़ना इनका सर्वोपरि कर्त्तव्य बताया गया है। इन सबके लिए यज्ञ करना भी एक अनिवार्य कर्त्तव्य बताया है, जिसके उपर्युक्त अर्थों के अतिरिक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि पञ्च महायज्ञों का करना भी इसी के अन्तर्गत समझना चाहिए। क्षत्रियों, विशेषकर राजाओं के लिए इन पञ्च महायज्ञों के अतिरिक्त बड़े-2 यज्ञों को करने का भी विधान किया गया है। जो व्यक्ति इनमें से किसी भी कर्म को योग्यतापूर्वक करने में समर्थ न हो सके, उसे ही शूद्र की संज्ञा दी गयी है।

4. शूद्र के कर्म —

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥ [मनु.2.91]

अर्थात् ईश्वर ने शूद्र के लिए एक ही कर्म का विधान किया है कि वह उपर्युक्त तीनों वर्णों की ईर्ष्या-द्वेष से रहित होकर सेवा करे।

लोकव्यवहार में भी देखा जाता है कि एक परिवार में यदि चार भाई हैं, उनमें से एक विद्वान् शिक्षाविद् बन जाता है, दूसरा कोई प्रशासनिक- सेना अथवा पुलिस का अधिकारी बन जाता है, तीसरा कोई उद्योगपति, व्यापारी, अर्थशास्त्री वा उन्नत कृषक बन जाता है और चौथा इन सबकी अपेक्षा मन्दबुद्धि होने के कारण इन तीनों भाइयों के छोटे-मोटे कामों में सहायक मात्र रह जाता है, तो इसमें पक्षपात वा भेदभाव कहाँ से आ गया? सभी आगे बढ़ने के समान अवसर पाने के तो अधिकारी हैं, परन्तु योग्यता असमान होने के कारण वे समान पदों के अधिकारी नहीं हो सकते। यदि ऐसा कर दिया गया, तो सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी। इतने पर भी, असमान पद रहते हुए भी, वे रहेंगे तो भाई ही। उनमें आपस में प्रेम और समानता का व्यवहार रहेगा ही। भगवान् मनु की दृष्टि में चारों वर्णों में यही सम्बन्ध होना चाहिए। इसको हम मनु जी की दण्ड-व्यवस्था के द्वारा भली-भाँति समझ सकते हैं कि वे सबसे दुर्बल वर्ण अर्थात् शूद्र के प्रति कितना दया का भाव रखते हैं। इस विषय में वे लिखते हैं—

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥ [मनु. 8.337-338]

यहाँ भगवान् मनु के अनुसार शूद्र यदि एक रुपये की चोरी करे, तो उसे आठ रुपये दण्ड देने का विधान है, क्योंकि यदि एक रुपया ही दण्ड होता, तो वह फिर से चोरी कर सकता था। उधर वैश्य को एक रुपये की चोरी करने पर शूद्र से दोगुना अर्थात् सोलह रुपये दण्ड तथा क्षत्रिय को शूद्र से चार गुना अर्थात् बत्तीस रुपये दण्ड देने का विधान है। क्षत्रिय सबका रक्षक होता है, उसका अपराध करना अधिक दण्डनीय है। ब्राह्मण के विषय में भगवान् मनु का विधान है कि इसी अपराध में ब्राह्मण को शूद्र की अपेक्षा और अधिक दण्ड देने का विधान है। वह दण्ड चौंसठ रुपये, एक सौ रुपये

और एक सौ अट्ठाईस रुपये तक हो सकता है अर्थात् शूद्र की अपेक्षा आठ से सोलह गुने तक दण्ड का विधान किया गया है। भगवान् मनु को शूद्र विरोधी कहने वाले संसार के विचारक और दण्ड विशेषज्ञों के अतिरिक्त मनुविरोधी विचार करें कि क्या अब भी भगवान् मनु शूद्र विरोधी हैं अथवा शूद्रों के सबसे बड़े हितैषी? भगवान् मनु की दृष्टि में जो जितना अधिक बुद्धिमान् वा समृद्ध है, वह उतना ही अधिक दण्डनीय है। राजा के विषय में भगवान् मनु का कथन है—

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्त्रमिति धारणा॥ [मनु. 3.336]

यहाँ राजा को साधारण व्यक्ति की अपेक्षा एक हजार गुना दण्ड देने का विधान है। इस विषय में सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

'मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा, उससे न्यून को सात सौ गुणा और उससे भी न्यून को छः सौ गुणा, इसी प्रकार उत्तर-उत्तर अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है, उसको आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिए। क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे, तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें; जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है, इसलिए राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्यपर्य्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिए।' [सत्यार्थ प्रकाश छठा समुल्लास]

वर्तमान लोकतान्त्रिक प्रणाली के प्रशंसकों को चाहिए कि वे संसार के किसी भी देश की दण्ड-व्यवस्था में शूद्र के प्रति इतनी दया-करुणा हमें दिखलाएँ। अपने भारत देश में तो हम देखते ही हैं, जहाँ राजा अर्थात् मन्त्रियों को या तो दण्ड है ही नहीं और यदि कभी संयोग से दण्ड मिल भी जाए, तो उसे पूर्ण सुविधाजनक दण्ड प्राप्त होता है, कारागार में बैठकर वह चुनाव भी लड़ सकता है और जमानत पर छूटकर शासन भी कर सकता है। उधर शूद्र

अर्थात् अल्पशिक्षित वा अशिक्षित व्यक्ति सामान्य अपराध पर कितनी यातनायें सहता है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। आज ऐसे ही सर्व-सुविधाभोगी जातियों की राजनीति करते हुए भगवान् मनु की निन्दा किया करते हैं। यदि आज भगवान् मनु की व्यवस्था होती, तो विधायिका, न्यायपालिका अथवा कार्यपालिका में किसी भी अपराधी का कोई स्थान नहीं होता और अपराधियों को दिए गये दण्ड से राजकोष भरा होता और कोई भी किसान, श्रमिक, निर्धन व अनपढ़ व्यक्ति कभी दुःखी और शोषित नहीं होता।

यदि मनुप्रोक्त व्यवस्था आज होती, तो देश में कोई अनपढ़ रहता ही नहीं, क्योंकि उस व्यवस्था में प्रत्येक बालक और बालिका को अनिवार्य रूप से शिक्षा दिलाने का विधान था। सभी गुरुकुल वा विद्यालय आवासीय होते थे, जिनमें सभी विद्यार्थियों के लिए समान भोजन, वस्त्र, शिक्षा, बिस्तर, चिकित्सा आदि की व्यवस्था राज्य की ओर से होती थी। विद्यार्थी चाहे राजकुमार हो अथवा शूद्र अथवा भिक्षुक की सन्तान हो, सबका जीवन-स्तर पूर्णतः समान रखा जाता था। किसी विद्यार्थी का अभिभावक, चाहे वह राजा क्यों नहीं हो, अपने पुत्र को विशेष सुविधा नहीं दिला सकता था। इस व्यवस्था से देश में कोई भी बालक अथवा बालिका अनपढ़ नहीं रह सकता है और निर्धन माता-पिता को अपने बच्चों की शिक्षा पूर्ण होने तक अर्थात् उनकी युवावस्था आने तक उनके खान-पान, वस्त्र, शिक्षा और चिकित्सा आदि किसी भी प्रकार के व्यय की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। इस प्रकार अपने बच्चों की सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर श्रमिक भी अपना जीवन सानन्द व्यतीत कर सकता है।

काश! यदि आज भगवान् मनु के अनुसार शासन होता, तो देश का हर बच्चा पढ़ रहा होता, कोई भीख नहीं माँग रहा होता, कोई बालश्रम का अभिशाप नहीं भोग रहा होता, कोई गलियों में कचरा नहीं बीन रहा होता, कोई झुग्गी-झोंपड़ियों में दुःखी जीवन नहीं जी रहा होता, कोई फुटपाथों पर नहीं सो रहा होता, जिसे कोई धन के अहंकार में अन्धा अपनी गाड़ी से रौंद

सके। भगवान् मनु का शूद्र अर्थात् श्रमिक न तो निर्धन है और न नितान्त अनपढ़ है। उसमें वेद पढ़ने की क्षमता नहीं है तो क्या हुआ, अन्य विद्याएँ तो पढ़ ही सकता था और पढ़ता भी था। इसी कारण पितामह भीष्म ने शूद्र को भी मन्त्री बनने का अधिकार दिया है। महाभारतकार लिखते हैं—

चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन्।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणिनः॥

वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेकविंशतिसंख्यया।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके॥

अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम्॥

[महाभारत–शान्तिपर्व–राजधर्मानु शासनपर्व 85.7–9]

अर्थात् राजा को चाहिए कि जो वेदविद्या के विद्वान्, निर्भीक, बाहर–भीतर से शुद्ध एवं स्नातक हों, ऐसे चार ब्राह्मण, शरीर से बलवान् तथा शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन–धान्य से सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचार–विचार वाले तीन विनयशील शूद्र तथा आठ गुणों से युक्त एवं पुराणविद्या को जानने वाला एक सूत मनुष्य, इन सब लोगों का एक मन्त्रिमण्डल बनावे। उस सूत की अवस्था लगभग पचास वर्ष की हो और वह निर्भीक व दोषदृष्टि से रहित हो।

अब कोई यह विचारे कि मन्त्री होने योग्य शूद्र क्या शिक्षित नहीं होगा? अवश्य होगा। क्या अब भी कोई मनु जी पर छुआछूत और भेदभाव आदि का आरोप लगा सकता है? ऋषि दयानन्द ने तो सत्यार्थ प्रकाश में यहाँ तक लिखा है—

जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाए, तो उसके माँ बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायेगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये?

उत्तर — न किसी की सेवा का भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी।

अब पाठक विचार करें, जो वैदिक व्यवस्था राष्ट्रहित में गुण-कर्म-स्वभाव एवं योग्यता का सम्मान करने के लिए अपनी सन्तान को भी दूसरे को समर्पित करने का आदेश वा प्रेरणा देती हो, उस व्यवस्था से आदर्श और क्या हो सकता है ? आज सम्पूर्ण संसार में ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ शान्ति, आनन्द और सन्तोष हो। यह सब मनुप्रोक्त वैदिक व्यवस्था को भूलने के कारण ही हुआ है।

अब हम यहाँ पूर्वोक्त मन्त्र पर **ऋषि दयानन्द** का भाष्य **ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका** से उद्धृत करते हैं-

भाष्यम्- (ब्राह्मणोऽस्य०) अस्य पुरुषस्य मुखं ये विद्यादयो मुख्यगुणाः सत्यभाषणोपदेशादीनि कर्माणि च सन्ति, ते यो ब्राह्मण आसीद् उत्पन्नो भवतीति। (बाहू राजन्यः कृतः) बलवीर्य्यादिलक्षणान्वितो राजन्यः क्षत्रियस्तेन कृत आज्ञप्त आसीदुत्पन्नो भवति। (ऊरू तदस्य०) कृषिव्यापारादयो गुणा मध्यमास्तेभ्यो वैश्यो वणिग्जनोऽस्य पुरुषस्योपदेशाद् उत्पन्नो भवतीति वेद्यम्। (पदभ्याᳬ शूद्रो०) पद्भ्यां पादेन्द्रियनीचत्वमर्थाज्जडबुद्धित्वादिगुणेभ्यः शूद्रः सेवागुणविशिष्टः पराधीनतया प्रवर्त्तमानोऽजायत जायत इति वेद्यम्।

भाषार्थ- (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) इस पुरुष की आज्ञा के अनुसार जो विद्या, सत्यभाषणादि उत्तम गुण और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है, वह मुख्य कर्म और गुणों के सहित होने से मनुष्यों में उत्तम कहाता है। (बाहू राजन्यः कृतः) और ईश्वर ने बल, पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है। (ऊरू तदस्य०) खेती, व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यमगुणों से वैश्य वर्ण सिद्ध होता है। (पद्भ्याᳬ शूद्रो०) जैसे पग सब से नीच (नीचे स्थित) अङ्ग है, वैसे

मूर्खता आदि नीच (निम्न) गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।

अपने **यजुर्वेद भाष्य 31.11** में इसी मन्त्र का भाष्य **ऋषि दयानन्द** ने इस प्रकार किया है—

पदार्थ– (ब्राह्मणः) वेदेश्वरविदनयोः सेवक उपासको वा (अस्य) ईश्वरस्य (मुखम्) मुखमिवोत्तमः (आसीत्) अस्ति (बाहू) भुजाविव बलवीर्य्ययुक्तः (राजन्यः) राजपुत्रः (कृतः) निष्पन्नः (ऊरू) ऊरू इव वेगादिकर्मकारी (तत्) (अस्य) (यत्) (वैश्यः) यो यत्र तत्र विशति प्रविशति तदपत्यम् (पद्भ्याम्) सेवानिरभिमानाभ्याम् (शूद्रः) मूर्खत्वादिगुणविशिष्टो मनुष्यः (अजायत) जायते।

भावार्थ– ये विद्याशमदमादिषूत्तमेषु गुणेषु मुखमिवोत्तमास्ते ब्राह्मणाः। येऽधिकवीर्य्या बाहुवत्कार्य्यसाधकास्ते क्षत्रियाः। ये व्यवहारविद्याकुशलास्ते वैश्या ये च सेवायां साधवो विद्याहीनाः पादाविव मूर्खत्वादिनीचगुणयुक्तास्ते शूद्राः कार्य्या मन्तव्याश्च।

पदार्थ– हे जिज्ञासु लोगो! तुम (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (ब्राह्मणः) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्यः) रजपूत (कृतः) किया (यत्) जो (ऊरू) जांघों के तुल्य वेगादि काम करने वाला (तत्) वह (अस्य) इसका (वैश्यः) सर्वत्र प्रवेश करने हारा वैश्य है (पद्भ्याम्) सेवायुक्त और अभिमान रहित होने से (शूद्रः) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ, ये उत्तर क्रम से जानो।

भावार्थ– जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करने हारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहारविद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण, विद्याहीन, पगों के समान मूर्खपन आदि नीचगुणयुक्त हैं वे शूद्र करने और मानने चाहियें।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ऋषि ने 'ऊरू' पद का अर्थ 'मध्यम' किया है, तो यजुर्वेद-भाष्य में 'ऊरू' का अर्थ 'जङ्घा' ही किया है। उणादि-कोष में इसकी व्युत्पत्ति करते हुए **ऋषि दयानन्द** लिखते हैं—

ऊर्णोत्याच्छादयति या सा ऊरूः जङ्घा।

इस व्युत्पत्ति से सम्पूर्ण कटिप्रदेश, इसमें जङ्घा और नाभिक्षेत्र सम्मिलित हैं, को ऊरू कहा जा सकता है। अब इस उपमा पर हम क्रमशः विचार करते हैं—

1. ब्राह्मण—

इस वर्ण की तुलना पुरुष के मुख अर्थात् सिर से की गयी है। इस मन्त्र का देवता पुरुष है, जो परमात्मा के अर्थ में प्रयुक्त है, परन्तु परमात्मा के मुखादि अङ्ग नहीं होते। इस कारण यहाँ आधिभौतिक अर्थ में पुरुष शब्द से पुरुषकृत् सृष्टि अर्थात् ईश्वर की सृष्टि, विशेषतः मानव-समाज का ग्रहण करेंगे। जिस प्रकार से शरीर में सिर सम्पूर्ण शरीर का मार्गदर्शक, प्रेरक व संचालक होता है, वही देखता, सुनता, सूँघता, चखता और बोलता है, वही उपदेष्टा और प्रत्येक कार्य में निर्देशक रूप होता है। इसलिए वह सम्पूर्ण शरीर में सबसे श्रेष्ठ भाग माना जाता है और श्रेष्ठ होता भी है। यदि हम मानव-समाज के सन्दर्भ में विचार करें, तो ब्राह्मण अर्थात् विद्वान्, योगी, शिक्षक ही समाज का निर्देशक, मार्गदर्शक व प्रेरक होता है। सभी वर्णों को यही मार्ग दिखाता है, जबकि इसको मार्ग दिखाने वाला कोई नहीं होता। इस कारण ब्राह्मण की पुरुष के मुख से तुलना करना तर्क के सर्वथा अनुकूल है। जिस राष्ट्र का ब्राह्मण वर्ग अर्थात् शिक्षक, उपदेशक, वैज्ञानिक आदि अल्पबुद्धि वाला होता है, वह राष्ट्र बिना पतवार की नौका के समान दिशाहीन और संकटापन्न हो जाता है।

2. क्षत्रिय—

इस वर्ण की तुलना पुरुष अर्थात् समाज की भुजाओं से की है। जिस

प्रकार शरीर का सम्पूर्ण बल भुजाओं में ही होता है। भुजाएँ ही अपने बल से सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करती हैं, उसी प्रकार समाज में क्षत्रिय ही सबसे अधिक बलशाली होने के कारण सम्पूर्ण समाज की रक्षा के लिए उत्तरदायी होता है। अन्य कोई भी अङ्ग इस कार्य में समर्थ नहीं हो सकता। इसी कारण क्षत्रिय को पुरुष अर्थात् समाज की भुजाएँ कहा है। जिस प्रकार शरीर में भुजाएँ दो होती हैं, उसी प्रकार क्षत्रिय भी दो बलों से युक्त होता है। वे दो बल हैं— बुद्धिबल एवं बाहुबल। वह इन दोनों का प्रयोग करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र व समाज का रक्षक व पालक होता है। जिस राष्ट्र के क्षत्रिय अर्थात् राजा, सेना और न्यायाधीश आदि कायर, बलहीन तथा मन्दबुद्धि हो जाते हैं, उस राष्ट्र की स्वतन्त्रता और सम्मान को बचाने वाला कोई भी शेष नहीं रहता।

3. वैश्य—

इस वर्ण की तुलना पुरुष की जङ्घाओं व कटिक्षेत्र से की गयी है। कटि क्षेत्र शरीर के तीन महत्त्वपूर्ण तन्त्रों को आच्छादित करने वाला होता है- पाचन तन्त्र, उत्सर्जन तन्त्र एवं उत्पादक तन्त्र। पाचन के द्वारा शरीर का विस्तार व पोषण और उत्पादक तन्त्र द्वारा सन्तति-विस्तार आदि महत्त्वपूर्ण कार्यों को आच्छादित व सम्पादित करने के कारण ही इस क्षेत्र को 'ऊरु' कहते हैं। समाज में वैश्य अर्थात् व्यापारी, कृषक व पशुपालक भी यही कार्य करते हैं। वे सम्पूर्ण समाज का भरण-पोषण करते हैं, वे पशुओं का भी भरण-पोषण करते हैं। जिस प्रकार शरीर में जङ्घाएँ सम्पूर्ण शरीर का भार उठाती हैं, उसी प्रकार समाज में वैश्य वित्त, अन्न, वस्त्र, दुग्ध आदि की दृष्टि से सम्पूर्ण समाज का भार वहन करता है। जिसकी जङ्घाएँ कमजोर होंगी, वह मनुष्य खड़ा भी नहीं रह सकता। उसी प्रकार जिस राष्ट्र में वैश्य कमजोर वा निर्धन होता है, वह राष्ट्र नष्ट हो जाता हैं।

4. शूद्र—

इस वर्ण की तुलना पैरों से की गई है। यदि हम अपनी शरीर रचना पर विचार करें, तो इस बात से कोई असहमत नहीं हो सकता कि पैर सम्पूर्ण

शरीर का आधार होते हैं। सभी अङ्गों का भार यही वहन करते हैं, इसी प्रकार समाज वा राष्ट्र में श्रमिक ही सम्पूर्ण राष्ट्र का आधार होता है। चाहे शिक्षा के बड़े-बड़े संस्थान हों, राजसभाएँ वा सेना हों, न्यायालय अथवा कृषि-व्यापार के बड़े-2 केन्द्र हों, चिकित्सालय हों अथवा प्रयोगशालाएँ हों, इन सबमें धरातल पर श्रमिक ही कार्य करता है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य सभी को शूद्र की आवश्यकता होती है। कोई यह विचारे कि क्या पैर शरीर के घृणित अङ्ग हैं, यदि नहीं, तो शूद्र घृणित कैसे हो सकता है?

वर्णों का पारस्परिक समन्वय—

हम शरीर में कितना सन्तुलन देखते हैं कि जब पैर में काँटा चुभता है, तो पीड़ा का अनुभव सिर को होता है और वह सिर हाथों को उस पैर की पीड़ा दूर करने का आदेश देता है। किसी भी अङ्ग पर कष्ट पड़े, उसकी पीड़ा सिर ही अनुभव करता है और हाथ ही सबकी रक्षा करते हैं। जब कीचड़, मिट्टी, काँटों को पार करना होता है, तो पैर ही सबको पार लगाते हैं, दूसरा कोई अङ्ग इस काम को नहीं कर सकता और जब काँटे, कीचड़, पत्थर अत्यधिक मात्रा में हों, तो सिर की प्रेरणा से हाथ ही मार्ग को साफ करते हैं और उसको पैरों के चलने योग्य बनाते हैं। उधर उदर को देखें, सारे भोजन से रस अवशोषित करके अपने पास कुछ भी संचित नहीं रखता, उसके पास रसों के भण्डारण की कोई व्यवस्था नहीं होती, बल्कि वह सम्पूर्ण रस को सभी अङ्गों को व्यवस्थित अनुपात में बाँटता रहता है। वेद ने विभिन्न वर्णों की शरीर के अङ्गों से तुलना करके मनुष्य को उत्कृष्ट समाज के निर्माण की सुन्दर प्रेरणा दी है।

जरा विचारें! आज समाज में श्रमिक सबसे अधिक दुःखी क्यों है? इसका कारण यह है कि आज अनपढ़ श्रमिक के दुःख का अनुभव बड़े-2 प्रबुद्ध जनों को होता ही नहीं है। यदि श्रमिकरूपी पैर में छोटा सा काँटा चुभने की पीड़ा आज के सिररूप ऐश्वर्यसम्पन्न बुद्धिजीवियों को होती, न्यायाधीशों और धर्माचार्यों को होती और वे भुजाओं के समान कार्य करने वाली

विधायिका और कार्यपालिका को श्रमिकों व निर्धनों की पीड़ा को दूर करने की प्रेरणा वा आदेश देते, तो संसार में कोई भी श्रमिक, निर्बल वा निर्धन यों पीड़ित व शोषित नहीं हो रहा होता। संसार के उद्योगपति और अन्य धनाढ्य व्यक्ति अपने उदर से प्रेरणा लेकर अन्न और धन सम्पदा का अपरिमित भण्डारण न करके सम्पूर्ण समाज में वितरित कर रहे होते, तो समाज में कोई भी निर्धन नहीं होता, न कोई भूखा और नङ्गा रहता, न कोई कुपोषण और रोगों से ग्रस्त होता। यदि समाज का क्षत्रिय अर्थात् नेता, अधिकारी, सुरक्षाबल व राजकर्मचारी अपनी भुजाओं से प्रेरणा लेकर समाज के प्रत्येक अङ्ग, यहाँ तक कि सभी पशु-पक्षियों की रक्षा का उत्तरदायित्व निभा रहे होते, तो आज कोई भी सबल व्यक्ति निर्बल के साथ अन्याय नहीं कर पाता और न कोई निर्बल रहता ही, बल्कि सभी आत्मसम्मान के साथ सबल होकर जीते।

आज दुर्भाग्य से इस मन्त्र से प्रेरणा लेने के स्थान पर वेद एवं भगवान् मनु आदि ऋषियों की ही निन्दा की जा रही है। ये निन्दा करने वाले महानुभाव शूद्र अर्थात् श्रमिक नहीं हैं, बल्कि बड़े-बड़े नेता, अभिनेता, उच्च अधिकारी, लेखक, साहित्यकार, शिक्षाविद् व कथित सामाजिक नेता हैं। बड़े-2 पदों का उपभोग करते हुए भी ये स्वयं को शूद्र मानते हैं, यह बड़े आश्चर्य का विषय है। भगवान् मनु जिन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का पद देते हैं, इसके साथ ही वे महानुभाव, जो स्वयं को राजाओं वा ऋषियों का वंशज मानते हैं, वे भी सरकार से कुछ लाभ प्राप्त करने के लोभ में अपना आत्मसम्मान बेचकर स्वयं को पिछड़ा ही बनाये रखना चाहते हैं, यह विडम्बना नहीं तो क्या है?

यदि आज मनु जी की व्यवस्था देश में लागू हो जाए, तो राजनीतिक दलों की जाति-आधारित विभाजनकारी राजनीति सर्वथा बन्द हो जाए और भारत में केवल एक जाति रह जाए और वह जाति होगी- मनुष्य और उनकी योग्यता व गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार देश को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए चार वर्ण हो जायें— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जिनके विषय में हम पर्याप्त लिख चुके हैं। जहाँ कहीं कोई टकराव और भेदभाव नहीं होगा,

बल्कि सबमें प्रेम, भाईचारे और सहकार का भाव होगा।

अब हम प्राक्वर्णित मन्त्र पर अपने अन्य मौलिक विचार प्रस्तुत करते हैं। इस मन्त्र पर जो पूर्वोक्त आचार्यों का भाष्य है, वह आधिभौतिक दृष्टि से है, जो सीधा समाज वा राष्ट्र को प्रभावित करता है। इन सभी भाष्यों में ऋषि दयानन्दकृत भाष्य अधिक स्पष्ट व व्यवस्थित है, जिसकी व्याख्या हमने अपनी आधिभौतिक दृष्टि से की है। इस कारण हमें पृथक् से इसका आधिभौतिक भाष्य करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, परन्तु अन्य दो प्रकार का भाष्य, जिनमें किसी भी मन्त्र का जो स्वाभाविक भाष्य होता है, वह आधिदैविक भाष्य सम्मिलित है, करते हैं।

आधिदैविक भाष्य

इसके लिए हम इस मन्त्र को पुनः उद्धृत करते हैं—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ॐ शूद्रोऽअजायत॥ [यजु. 31.11]

इस मन्त्र का ऋषि नारायण है। [**नरः** = अश्वनाम (निघं.1.14), नयनकर्त्तारो मनुष्या वायवो वा (म.द.ऋ.भा.1.64.10)] आशुगामी मरुद् रश्मियाँ अथवा किरणें ही नर कहलाती हैं और इनके लिए जो मार्ग बनाता है अथवा इनको जो ले जाता है, वह नारायण कहलाता है। इस कारण इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति प्राण और अपान के मिश्रित रूप से होती है। यहाँ 'नरः' पद का अर्थ धनञ्जय रश्मि है और उससे उत्पन्न 'नारः' ही प्राणापान का मिश्रित रूप है। इसका देवता पुरुष है। [**पुरुषः** = पुरुषो वै यज्ञः (जै.उ.4.2.1), पुरुषो वाव संवत्सरः (श.12.2.4.1), पुरुष एव सविता (जै.उ.4.27.17)]

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से सूर्यलोक में होने वाली विभिन्न संयोगादि क्रियाओं में भाग लेने वाली विभिन्न रश्मियाँ अधिक अनुकूलता से कार्य करने में सक्षम होती हैं और उन रश्मियों

के क्षेत्र में उनसे उत्पन्न रंगों के साथ-2 लालिमायुक्त भूरे रंग के प्रकाश की भी उत्पत्ति होने लगती है। इसका आधिदैविक भाष्य इस प्रकार है—

(**ब्राह्मणः, अस्य, मुखम्, आसीत्**) [**ब्राह्मणः** = गायत्रछन्दा वै ब्राह्मणः (तै.1.1.9.6), गायत्रो वै ब्राह्मणः (ऐ.1.28, जै.2.102)] केवल सूर्य ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सृष्टि में होने वाली यजन क्रियाओं में गायत्री छन्द रश्मियाँ मुख का कार्य करती हैं। जिस प्रकार शरीर में मुख से उच्चरित वाणी सम्पूर्ण शरीर के लिए प्रेरणा देने का कार्य करती है अथवा सम्पूर्ण शरीर के पोषण के लिए मुख अन्नादि का भक्षण करता है, उसी प्रकार गायत्री छन्द रश्मियाँ विभिन्न पदार्थों के संयोग के समय अनिवार्य एवं प्राथमिक भूमिका निभाती हैं। ये रश्मियाँ ही अन्य सभी रश्मि आदि पदार्थों को नाना यजन प्रक्रियाओं के लिए प्रेरित करती हैं। प्रसिद्ध 'ओम्' रश्मि भी दैवी गायत्री छन्द है, जो सम्पूर्ण सृष्टि की आद्यप्रेरक एवं आधार है।

(**बाहू, राजन्यः, कृतः**) [**बाहू** = बाहू कस्मात्? प्रबाधत आभ्यां कर्माणि (नि.3.8)। त्रिष्टुब्छन्दा वै राजन्यः (तै.ब्रा.1.1.9.6), **राजन्यः** = आनुष्टुभो राजन्यः (मै.4.4.10); (तां.18.8.14), त्रैष्टुभो राजन्यः (जै.2.102)] इस सृष्टि यज्ञ में, जिनमें सूर्यादि लोकों में होने वाली यजन क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं, त्रिष्टुप् छन्द रश्मियाँ बाहू के समान उत्पन्न होती हैं अर्थात् वे बाहू का कार्य करती हैं। जिस प्रकार मनुष्य भुजाओं के द्वारा ही सारे कार्य सम्पादित करता है, क्योंकि वह अपने बल का प्रयोग भुजाओं द्वारा ही कर पाता है, उसी प्रकार सृष्टि में तीव्र बलों से होने वाला कार्य त्रिष्टुप् छन्द रश्मियाँ ही करती हैं, इसलिए **महर्षि याज्ञवल्क्य** ने इनकी तुलना इन्द्र से करते हुए लिखा है— '**इन्द्रस्त्रिष्टुप्**' (श.6.6.2.7) ये रश्मियाँ ही विभिन्न बाधक रश्मियों को नष्ट करने के लिए वज्र का कार्य करती हैं। जब ये रश्मियाँ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ मिल जाती हैं, तब ये और भी शक्तिशाली होकर अन्य अनेक रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न करने लगती हैं। इसी कारण **महर्षि ऐतरेय महीदास** ने कहा है—

'वृषा वै त्रिष्टुब् योषानुष्टुप्' (ऐ.आ.1.3.5, तु.कौ.20.3)

वैसे भी अनुष्टुप् छन्द रश्मियाँ अन्य किसी भी छन्द रश्मि को अधिक अनुकूलता व सक्रियता प्रदान करती हैं। इस कारण इन दोनों छन्द रश्मियों का मिश्रित रूप सूर्यादि लोक वा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बाहू का कार्य करता है।

(**ऊरू, तत्, अस्य, यत्, वैश्यः**) [**विश्** = विड् जगती (जै.1.286), वैश्यो जगतीछन्दाः (जै.1.69)] इस सृष्टियज्ञ में जगती छन्द रश्मियाँ ऊरु के समान व्यवहार करती हैं अर्थात् ये छन्द रश्मियाँ सभी पदार्थों को आच्छादित करती हुई दूर-2 तक व्याप्त होती हैं, इसलिए इन रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है— **'गततमं छन्दः'** (नि.7.13), **'जगती गततमं छन्दः'** (दे.3.17) अर्थात् यह छन्द दूर-2 तक व्याप्त हुआ होता है, इसलिए ही इसको जगती कहते हैं और इसलिए ही इसकी तुलना ऊरू (जङ्घाएँ एवं कटिप्रदेश) से की गयी है। इस छन्द रश्मि का अन्य सभी छन्द रश्मियों के साथ विस्तार होता है, इसलिए **महर्षि याज्ञवल्क्य** का कथन है— **'जगती सर्वाणि छन्दांसि'**। (श.6.2.1.30) जिस प्रकार कटिप्रदेश में अन्य तन्त्रों के साथ-2 उत्पादक तन्त्र भी होता है, उसी प्रकार इन रश्मियों का पदार्थों के उत्पादन से विशेष सम्बन्ध होता है। इसलिए कहा गया है— **'प्रजननं जगती'** (जै.1.93; ष.2.3)

(**पद्भ्याम्, शूद्रः, अजायत**) [**शूद्रः** = आनुष्टुभः शूद्रः (जै.1.102), शूद्रोऽनुष्टुप्छन्दाः (जै.1.69)] इस सृष्टि में अनुष्टुप् छन्द रश्मियाँ ही शूद्र कहलाती हैं। अनुष्टुप् के विषय में **महर्षि यास्क** का कथन है-

'अनुष्टुबनुष्टोभनात्' (नि.7.12)।

इस विषय में अन्य ऋषियों का भी कथन है—

'वागनुष्टुप् सर्वाणि छन्दांसि' (तै.1.7.5.5),
'अनुष्टुबनुष्टोभनात्' (दे.3.7)।

इसका अर्थ यह है कि ये रश्मियाँ अन्य रश्मियों को अनुकूलता-पूर्वक थामकर उनके प्रभाव को अधिक समृद्ध करती हैं। इनकी तुलना पैरों से इसलिए की गयी है, क्योंकि पैर भी सम्पूर्ण शरीर को थामकर उन अंगों को अनुकूलता प्रदान करते हैं।

ज्ञातव्य— हमारी यह व्याख्या सम्पूर्ण सृष्टि में हो रही यजन क्रियाओं को लेकर की गयी है। ये यजन क्रियाएँ तारों में भी हो सकती हैं, अन्य लोकों वा अन्तरिक्ष में भी हो सकती हैं। चारों पदार्थों की भूमिका सर्वत्र यही रहेगी। स्मरण रहे कि किसी भी अन्य मन्त्र के समान इस मन्त्र का स्वाभाविक भाष्य आधिदैविक ही होगा, जो हमने यहाँ किया है। आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक भाष्य आधिदैविक के पश्चात् ही सम्भव होते हैं, क्योंकि मनुष्य ने भाषा ही वेद से सीखी है और पदार्थ के नाम भी वेद से ही रखे हैं। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र संज्ञक उपर्युक्त रश्मियों के गुणों को देखकर ही मनुष्य ने ब्राह्मणादि नामों को सीखा और उपयोग में लेना आरम्भ किया। जिस प्रकार रश्मियों के नाम भी उनके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ही होते हैं, उसी प्रकार वर्णों के नाम भी उनके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ही होते हैं।

आज इनके नाम पर जो भी वैमनस्य फैलाया जा रहा है, उसके पीछे कुछ लोगों की अज्ञानता और कुछ लोगों की दुष्टता ही कारण है।

आध्यात्मिक भाष्य

ज्ञातव्य है कि 'आत्मा' पद का अर्थ जहाँ जीवात्मा और परमात्मा है, वहीं इसका एक अर्थ शरीर भी है। इस विषय में ऋषियों का कथन है— **'पाङ्क्त इतर आत्मा लोमत्वङ्मांसमस्थि मज्जा'** (तां.5.1.4), **'आत्मा वै तनूः'** (श.7.3.1.23; 7.5.2.32) इस कारण हम आध्यात्मिक भाष्य में इन तीनों (आत्मा, परमात्मा व शरीर) का ग्रहण कर सकते हैं। परमात्मा के सन्दर्भ में आधिदैविक भाष्य ही आध्यात्मिक भाष्य के रूप में समझा जा सकता है, जब हम 'पुरुषः' पद का अर्थ ईश्वर द्वारा रची गयी सृष्टि न लेकर ईश्वर ही

ग्रहण करें। उस समय गायत्री आदि छन्द रश्मियाँ ब्राह्मण आदि के रूप में कार्य करती हुई ईश्वर की प्रेरणा से ही कार्य करती हैं। इस कारण उन रश्मियों को उसी प्रकार ईश्वर के अङ्ग के रूप में दर्शाया है, जिस प्रकार निम्नलिखित मन्त्र में अन्तरिक्षादि की तुलना ईश्वर के नाभि आदि अङ्गों से की गयी है—

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ (यजुर्वेद 31.13)

विशेष व्याख्या हम आधिदैविक भाष्य में कर ही चुके हैं। जब हम आत्मा वा पुरुष का अर्थ जीवात्मा वा शरीर ग्रहण करें, तब इस मन्त्र का भाष्य इस प्रकार होगा—

(**ब्राह्मणः, अस्य, मुखम्, आसीत्**) इस शरीर में सबसे उत्तम भाग मुख अर्थात् सिर ब्राह्मण के समान कार्य करता है। 'मुखम्' पद के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है— '**मुखं प्रतीकम्**' (श.14.4.3.7) अर्थात् मुख शरीर की पहचान कराने वाला होता है और हम जानते हैं कि पहचान केवल जिह्वा व होठों आदि से नहीं हो सकती, बल्कि सम्पूर्ण मुखमण्डल से ही होती है। इस कारण हमने मुख का अर्थ सिर ग्रहण किया है। हमारे शरीर में शिरस्थ अङ्ग आँख, कान, नाक, रसना, वाणी व मस्तिष्क सम्पूर्ण शरीर की संवेदनाओं को ग्रहण करते, उन्हें प्रेरित व संचालित करते हैं, इस कारण यह सिर हमारे शरीर का ब्राह्मण रूप है। शरीर के किसी भी अङ्ग की पीड़ा अथवा किसी भी अङ्ग का स्वास्थ्य व सुख आदि सिर ही अनुभव करता है और प्रत्येक पीड़ा को दूर करने के लिए नाना प्रकार से विचार भी करता है। इस कारण भी सिर हमारे शरीर का ब्राह्मण है। इस स्वभाव से प्रेरणा लेकर समाज में ब्राह्मण वर्ग वैसा ही व्यवहार करके अपने आध्यात्मिक स्तर को उच्च बना सकता है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी साधक को समाज व परिवार की वास्तविक समस्याओं, विशेषकर अज्ञानता व मानसिक प्रदूषण को दूर करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। ऐसा न करने पर उसकी साधना एक

आडम्बर मात्र रह जायेगी।

(**बाहू, राजन्यः, कृतः**) हमारे शरीर में भुजाएँ क्षत्रिय का कार्य करती हैं। ये भुजाएँ ही हैं, जो शरीर के किसी भी अङ्ग पर होने वाले प्रहार को अपने ऊपर लेने को उद्यत रहती हैं। प्रहार सिर पर हो या हाथों पर, सीने पर हो अथवा पीठ पर अथवा पैरों पर, हमारे हाथ तुरन्त उस प्रहार को अपने ऊपर लेने के लिए उठ जाते हैं और न केवल उस प्रहार को अपने ऊपर सहन करते हैं, अपितु प्रहारकर्त्ता पर तुरन्त प्रत्याक्रमण भी करते हैं। इसी प्रकार अध्यात्म पथ के क्षत्रिय साधक को दूसरों के दुःख से दुःखी होकर सबके दुःख बाँटने एवं उन दुःखों को दूर करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। अपने निकट चीत्कार करते हुए भूखे, नंगे, घायल व पीड़ितों की उपेक्षा करके नेत्र बन्द कर ध्यान में बैठे रहना आध्यात्मिकता कदापि नहीं है।

(**ऊरू, तत्, अस्य, यत्, वैश्यः**) हमारे शरीर में जङ्घाएँ एवं कटिप्रदेश वैश्य का काम करते हैं। जिस प्रकार समाज में वैश्य अधिकाधिक धन का अर्जन करके समाज वा राष्ट्र के हित में सम्पूर्ण धन को समर्पित कर देते हैं और उस धन की वृद्धि भी करते रहते हैं, इसी प्रकार शरीरस्थ मध्यभाग रसादि धातुओं का अधिकाधिक संचय करके सम्पूर्ण शरीर को आवश्यकतानुसार प्रदान करता रहता है और संतति-विस्तार का कार्य भी करता है। इसी कारण यह वैश्यरूप है। इससे प्रेरित होकर प्रत्येक वैश्य साधक को चाहिए कि वह धर्मपूर्वक अधिक धन अर्जित करने का प्रयास करे और वह 'इदं राष्ट्राय स्वाहा, इदं राष्ट्राय इदन्न मम' की भावना के अनुसार व्यक्तिगत रूप से आवश्यकता से अधिक धन का संचय कभी न करे। धनादि का संचय करने वाले कभी सच्चे साधक नहीं कहला सकते, बल्कि वे अध्यात्म मार्ग के बहुत बड़े बाधक हैं।

(**पद्भ्याम्, शूद्रः, अजायत**) शरीर में पैर शूद्र के रूप में कार्य करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। जिस प्रकार समाज का श्रमिक वर्ग शरीर से परिश्रम करके सम्पूर्ण राष्ट्र का आधार बन जाता है। वह तीनों वर्णों की सेवा में प्रतिक्षण जुटा

रहता है, उसी प्रकार हमारे शरीर में पैर भी शरीर के अन्य सभी अङ्गों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्हें जहाँ चाहें, ले जाते रहते हैं, उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। इसी प्रकार श्रमिक साधक को चाहिए कि वह बिना किसी स्वार्थ के अपने से अधिक श्रेष्ठ जनों का सत्कार सदैव विनम्रतापूर्वक करते रहें।

यहाँ पाठक विचार करें कि जो मन्त्र हमारे जीवन, समाज व राष्ट्र का कायाकल्प कर सकता है, उसी को हमने अपनी अज्ञानता से समाज में विष घोलने का साधन बना लिया है। यह मन्त्र सम्पूर्ण विश्व को बन्धुत्व और किसी भी राष्ट्र को सच्ची राष्ट्रभक्ति सिखाने के लिए बहुत बड़ा आधार बन सकता है। वर्तमान विश्व की सभी सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान की दिशा में इस मन्त्र की भूमिका सबसे अहम हो सकती है। काश! हम अपने पूर्वाग्रहों और स्वार्थों को छोड़कर आत्मा और अन्तःकरण से इस मन्त्र का भाव समझ सकें, तो वैदिक वर्णव्यवस्था के प्रति विश्व जनमानस का, विशेषकर निर्धनों, शोषितों, पीड़ितों और अशिक्षितों का ऐसा आकर्षण बढ़ेगा कि विभाजनकारी राजनीति भी उसे रोक नहीं सकेगी। ईश्वर सबको सुमति प्रदान करे।

यहाँ पाठकों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण कर्म से ही थे और शूद्र का कार्य तीनों वर्णों की सेवा करना ही था, तब क्या शूद्र को वेद पढ़ने का कोई अधिकार नहीं था?

उत्तर– यदि शूद्र को वेद पढ़ने का किञ्चित् अधिकार न होता, तो भगवान् मनु 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' क्यों कहते? जब कोई शूद्र वर्णस्थ व्यक्ति अपने पुरुषार्थ व बुद्धिबल से अपना वर्ण परिवर्तित करने में सक्षम हो जाता, तब उसका वर्ण परिवर्तित मान लिया जाता था। वेद पढ़ने का अधिकार सबको देते हुए स्वयं वेद ने कहा है–

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ [यजुर्वेद 26.2]

जब वेद स्वयं सबको यह अवसर प्रदान कर रहा है कि सभी वेद पढ़ सकते हैं, तब दूसरा कोई व्यक्ति वा ग्रन्थ इसके विरुद्ध आदेश कैसे दे सकता है? यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे वेदविरोधी, मनुविरोधी, अनार्य वा दस्यु मानना चाहिए। ऐसी स्थिति में वेद पढ़ने वा सुनने पर दण्ड देने की बातें वेदविरोधी एवं भारतविरोधी लोगों ने ऋषियों के ग्रन्थों में समय-2 पर मिला दी हैं। जो लेखक वा नेता इन्हीं बातों को आधार बनाकर वेद एवं ऋषियों की निन्दा करते हैं अथवा किसी को नीचा दिखाते वा वैमनस्य फैलाते हैं, वे निश्चित ही अमानवीय कार्य कर रहे हैं।

जब चारों वर्णों में इतना प्रेम व सहकार का भाव था, तब क्या उनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध भी हुआ करते थे?

उत्तर- हाँ, वैदिक काल में ऐसा भी होता था। इसके कुछ उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

1. श्रवण कुमार ब्राह्मण थे, जबकि उनके पिता वैश्य तथा माता शूद्रा थीं।

शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप।
अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वा नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप॥

(वा. रामा. अयोध्याकाण्ड सर्ग 63.51, सर्ग 64.55 गीता प्रेस)

अर्थात् श्रवण ने राजा दशरथ से कहा- हे राजन्! मैं वैश्य से शूद्रा में पैदा हुआ हूँ॥ 51॥

श्रवण के पिता ने कहा- हे राजन्! चूँकि तुझ क्षत्रिय ने अज्ञान से श्रवण मुनि को मार दिया, इसलिए तुझे ब्रह्महत्या नहीं लगी॥ 55॥

2. महात्मा विदुर की पत्नी के पिता ब्राह्मण तथा माता शूद्रा थीं। (महाभारत आदिपर्व के सम्भवपर्व अध्याय 113, श्लोक 12, गीता प्रेस)

3. राजा धृतराष्ट्र की एक पत्नी वैश्य वर्ण की थी। (देखें- उपर्युक्त अ. 114)

यहाँ कोई यह आरोप लगा सकता है कि उच्च वर्णस्थ व्यक्ति निम्न वर्णस्थ कन्या से तो विवाह कर लेता था, परन्तु उच्च वर्णस्थ व्यक्ति अपनी कन्या को निम्नवर्ण में क्यों नहीं देता था? इसका उत्तर यह है कि आज भी कोई भी पिता अपनी कन्या को स्वयं से अधिक सम्पन्न व शिक्षित परिवार में ही देना चाहता है, जिससे उसकी पुत्री सुखी रहे। यही भाव उस समय भी था। तब इसमें किसी को क्या दोष दिखाई दे सकता है?

यदि वर्णों में परस्पर इतना ही प्रेम था, तब गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को योग्य होते हुए भी शिक्षा क्यों नहीं दी? और जब वह स्वयं अपने पुरुषार्थ से महान् धनुर्धर बन गया, तब आकर स्वयं गुरु बनकर दक्षिणा में उससे उसके हाथ का अँगूठा ही माँग लिया। क्या यह एकलव्य के साथ अत्याचार नहीं था?

उत्तर- गुरु द्रोणाचार्य केवल राजपरिवार के शिक्षक थे, इसी कारण उन्होंने एकलव्य और कर्ण जैसे होनहार बच्चों को धनुर्वेद की शिक्षा नहीं दी। इसके अतिरिक्त छुआछूत जैसा भेदभाव इसका कारण नहीं था। जब महाराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ हो रहा था, उस समय महान् धनुर्धारी एकलव्य विश्व के बड़े-2 राजाओं और योद्धाओं की सभा में सम्मानित आसन पर आसीन था। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा का विरोध करते हुए चेदिनरेश शिशुपाल ने अनेक राजाओं और योद्धाओं के समक्ष भगवान् श्री कृष्ण को असभ्यतापूर्ण भाषा में हीन सिद्ध करने का प्रयास किया था, इसी क्रम में उसने यह भी कहा था—

नृपे च रुक्मिणि श्रेष्ठे एकलव्ये तथैव च।

शल्ये मद्राधिपे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥

(महाभारत, सभापर्व, अर्घाभिहरण पर्व, अ. 37, श्लोक 14)

कोई बताये कि यहाँ एक क्षत्रिय नरेश क्यों एकलव्य की विशिष्ट पुरुषों के रूप में उस विश्वप्रसिद्ध राजसभा में गणना कर रहा था? यदि उस काल में शूद्र को हेय माना जाता, तो ऐसा कैसे सम्भव था?

इससे यही सिद्ध होता है कि उस समय जन्म नहीं, बल्कि योग्यता व कर्म का सम्मान था। यह बात उस समय की है, जब वैदिक मर्यादा का पतन प्रारम्भ हो गया था और यह पतन ही महाभारत युद्ध का बीज बनकर भारत के विनाश का कारण बना।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को तो वैदिक धर्म का प्रतिपालक माना जाता है, तब भी उन्होंने देवर्षि नारद के भड़काने पर तपस्यारत निर्दोष शूद्र की निर्मम हत्या क्यों की?

उत्तर– परम पवित्र पुरुष भगवान् श्रीराम पर ऐसा आरोप लगाना किसी दुष्ट का सुविचारित घृणित षड्यन्त्र ही हो सकता है। इसी कारण किसी ने वाल्मीकि रामायण में ऐसा प्रक्षेप कर दिया। आप जरा विचारें कि जिन श्रीराम को महर्षि वाल्मीकि 'रक्षिता जीवलोकस्य', 'आर्यः सर्वसमः', 'सर्वलोक-प्रियः' जैसे विशेषणों से विभूषित करते हैं, वे ही श्रीराम किसी तपस्यारत शूद्र से घृणा कैसे कर सकते हैं?

जरा विचारें! मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, जिनके दर्शन के लिए बड़े-2 ऋषि-मुनि लालायित रहते थे और जिनके दर्शन करके महर्षि शरभङ्ग जैसे सिद्ध पुरुष अपना जीवन-काल पूर्ण समझकर योगबल से प्राण त्यागकर संसार से चले गये, ऐसे महापुरुष तपस्विनी शबरी के आश्रम में जाकर उन्हें 'तपोधना' जैसे सम्मानित विशेषण से विभूषित करते हैं और उनके आतिथ्य को बड़े प्रेम से स्वीकार करते हैं, वही श्रीराम तपस्वी शम्बूक की हत्या कैसे कर सकते हैं? श्रीराम वेद-वेदाङ्ग तत्त्ववेत्ता थे और वैदिक मर्यादा के पूर्ण

प्रतिपालक थे, तब शम्बूक की हत्या जैसा वेदविरुद्ध पाप कैसे कर सकते हैं? वस्तुतः वाल्मीकि रामायण का उत्तर काण्ड पूर्णरूप से संदिग्ध और प्रक्षिप्त है और इसी काण्ड में माता सीता के निर्वासन की दुःखद मनगढ़न्त कहानी भी है।

सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है—

''एक मनुष्य जाति थी। पश्चात् 'विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः' यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से 'आर्य्य' और 'दस्यु' दो नाम हुए। 'उत शूद्रे उतार्ये'-ऋग्वेद वचन। आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।'' [सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास]

लगभग ऐसा ही प्रकरण इसी समुल्लास में अगले पृष्ठ पर है। पूर्वोक्त वेद प्रमाणों को उद्धृत करते हुए ऋषि लिखते हैं—

''यह भी वेद प्रमाण है— यह लिख चुके हैं कि आर्य्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य्य और शूद्र का नाम अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी है।''

यहाँ स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि शूद्र को 'अनार्य्य' कहा गया है, जबकि चारों वर्णों को आर्यों के भेद भी बता दिया गया है, यह विरोधाभास क्यों है?

उत्तर– इसका सार यह है कि परमात्मा की सृष्टि में एक जाति मनुष्य थी वा

मनुष्य के रूप में जन्म से पैदा होती है। फिर यही मनुष्य आगे चलकर गुणभेद से दो भागों में बँटा।

यह ध्यातव्य है कि आर्य की मुख्य पहचान धार्मिकता ही है, न कि विद्वान् होना। ऐसा न होने पर वह दस्यु से अलग नहीं हो पायेगा। आर्यों में शूद्र धार्मिक तो है, परन्तु मूर्ख होने से अनाड़ी हो गया, जो अनार्य का अपभ्रष्ट रूप है। स्मरण रहे अनार्य का अर्थ दुष्ट, डाकू व निन्दनीय नहीं है। यह शूद्र, दस्यु की अपेक्षा आर्य है और द्विजों की अपेक्षा अनार्य। इसी कारण श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में अर्जुन को गलितगात्र होने के कारण अनार्य कहकर सम्बोधित किया है। इसमें आपत्ति की बात क्या है? कोई कहे कि आर्य का एक भेद आर्य व दूसरा अनार्य कैसे? हाँ, मनुष्य के दो भेद 'आर्य' और 'दस्यु' हो सकते हैं। मैं पूछता हूँ कि रामायण और महाभारत काल में मनुष्य के राक्षस, किन्नर, देव, गन्धर्व, गृध, वानर, नाग, ऋक्ष, मनुष्य अनेक कैसे हुए? यहाँ भी मनुष्यों के भेद में एक नया भेद 'मनुष्य' भी है, शेष सब अन्य। तब उन्हें क्या कोई दूसरा प्राणी मान लिया जाये? नहीं। राम, लक्ष्मण, कौरव, पाण्डव आदि को मनुष्य, जबकि इन्द्र, ब्रह्मा, शिव आदि को देव, रावण, खर, बक आदि को राक्षस, हनुमान्, सुग्रीव को वानर आदि कहा है। इसी प्रकार आर्यों से शूद्र का अलग विभाग समझना चाहिए।

यहाँ कोई यह कहे कि देव, राक्षस, गन्धर्व, वानर आदि पृथक् योनियाँ हैं, न कि ये मनुष्य योनि के भाग हैं। मैं ऐसे महानुभावों को वाल्मीकीय रामायण पढ़ने का परामर्श दूँगा, जहाँ रावण के अन्तःपुर में इन सभी वर्गों की स्त्रियों के होने का वर्णन है। यदि पृथक्-2 योनियाँ होतीं, तो उनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध नहीं हो सकते थे। ऐसा होने पर उनसे वंश परम्परा नहीं चल सकती। इस कारण इन सबमें समानता अनिवार्य है।

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखा है—

''द्विज अपने सन्तानों को उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हो, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण को उपनयन करे बिना विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दें।''

(सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास)

इसका अर्थ यह हुआ कि शूद्र को अपना उपनयन संस्कार कराने का अधिकार नहीं है। उधर तृतीय समुल्लास में लिखा है—

''कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हो, तो उसको मन्त्र संहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े, परन्तु उसका उपनयन न करे। यह मत अनेक आचार्यों का है।''

उत्तर– पहले हम यज्ञोपवीत के प्रकरण पर विचार करते हैं और सत्यार्थ प्रकाश के एक कथन को और उद्धृत करते हैं–

'प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य कुल में हो।' [सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास]

इन दोनों पर विचारने पर निम्नलिखित परिणाम प्राप्त होता है–

1. द्विज अर्थात् जो वेदविद्या के ज्ञाता हैं, वे बच्चों का संस्कार घर में ही करके आचार्य कुल में भेज दें।

2. शूद्र अर्थात् अनपढ़, परन्तु ईर्ष्यारहित, सेवाभावी, धार्मिक सेवक अपने बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार न करें। ऐसा इस कारण लिखा, क्योंकि वे संस्कार कराने की योग्यता ही नहीं रखते हैं और बिना योग्यता अधिकार नहीं मिलता। पुनरपि बच्चा, जो अभी योग्यायोग्य की कसौटी पर नहीं कसा गया, आचार्य

कुल में अवश्य भेजा जा रहा है अर्थात् उसे भी पढ़ने का अवसर मिलने का पूरा अधिकार है।

3. उपनयन संस्कार स्वगृह के अतिरिक्त आचार्य द्वारा गुरुकुल में भी किया जाता है, तब वहाँ आचार्य सब बालकों की योग्यता देखकर संस्कार करा ही देगा। यदि कोई शूद्रत्व के गुण ही रखता है, तो नहीं करायेगा। यह सर्वथा उचित भी है कि जो यज्ञोपवीत के कर्त्तव्य का निर्वहन नहीं कर सकता, उसे दिया ही क्यों जावे ? आज जिस प्रकार माँसभोजी राक्षसों, लम्पटों, कामियों, मदिरा पीने वालों, दुष्टों को प्रसाद की भाँति यज्ञोपवीत बिना किसी परिचय के बाँट दिया जाता है, ऐसा उचित नहीं है। इसी कारण ऋषियों का ऐसा विधान नहीं है। इस प्रकार शूद्रकुलोत्पन्न, परन्तु योग्य बालक का यज्ञोपवीत एक बार अर्थात् आचार्य कुल में ही होगा, वहीं द्विज कुलोत्पन्न योग्य बालक का यज्ञोपवीत दो बार (स्वगृह व गुरुकुल में) तथा द्विज कुलोत्पन्न परन्तु अयोग्य एवं शूद्रकुलोत्पन्न अयोग्य का यज्ञोपवीत क्रमशः एक बार (स्वगृह) एवं एक बार भी नहीं होगा।

इसके साथ इतना और समझ लेना चाहिए कि द्विज के बालक के विद्या ग्रहण की योग्यता की सम्भावना शूद्र के बालक की अपेक्षा अधिक रहेगी, क्योंकि प्रथम तो माता-पिता के विद्वान् होने, गृह में विद्या के संस्कार व परिवेश होने तथा आनुवंशिक गुणों (वैज्ञानिकों के नवीन मतानुसार 75 प्रतिशत संस्कार जीन्स द्वारा सन्तति में आते हैं) के होने से। जैसे उच्च शिक्षितों के बच्चे अशिक्षितों के बच्चों की अपेक्षा प्रायः उच्च शिक्षा में आगे रहते हैं। परन्तु इसका आशय यह नहीं कि इसका विपरीत सम्भव नहीं। सम्भव अवश्य है, परन्तु अपेक्षाकृत कम।

इस प्रकार वर्ण चुनने के अवसर प्राप्त करने का अधिकार सबको बराबर, परन्तु वर्ण प्राप्त करने का अधिकार योग्यतानुसार ही है। आज भी कलेक्टर बनने का अधिकार सबको है, परन्तु इसका आशय यह नहीं कि जो चाहे, उसे कलेक्टर बना दिया जायेगा। इसकी परीक्षा आई.ए.एस. में भी बैठने

हेतु स्नातक न्यूनतम चाहिए, परन्तु स्नातक होने पर भी बात पूरी नहीं होती। आई.ए.एस. की सभी परीक्षायें उत्तीर्ण की हों, तदुपरान्त साक्षात्कार में भी उत्तीर्ण हो, तब कहीं कलेक्टर वा अन्य उच्चाधिकारी बन पायेगा। जब आज भी समान अधिकार नहीं, बल्कि यथा-योग्यतावाद है, फिर दयानन्द को दोषी कैसे मान सकते हैं?

अब दूसरे प्रकरण को लेते हैं। इस विषय मे ऋषि दयानन्द

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ [यजुर्वेद 26.2]

इस मन्त्र पर व्याख्यान करते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं—

'क्या परमेश्वर शूद्रों का भला नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने, सुनाने का न होता, तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्रेन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं। और जहाँ कहीं निषेध किया है, उसका अभिप्राय यह है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है।'

किसी के इस प्रश्न कि 'यदि शूद्र वेद पढ़ेंगे, तो हम क्या करेंगे?' का कठोर उत्तर देते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं— 'तुम कुआँ में पड़ो'। इतने पर भी क्या कोई सत्यार्थ प्रकाश में शूद्र के प्रति छुआछूत और भेदभाव का आरोप लगा सकता है?

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में भङ्गी, चमार, नीच आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है, क्या ये घृणासूचक शब्द नहीं हैं?

उत्तर– प्रथम ध्यातव्य है कि कोई शब्द किस सन्दर्भ तथा परिस्थिति में प्रयुक्त हुआ है, यह विचार करना आवश्यक होता है। आज जो वर्ग सफाई का काम करता है, उसे उस समय भारतभर में 'भंगी' कहा करते थे। काम भी मैला ढोने का होता था, इस कारण शब्द भी बुरा हो गया। वैसे इस शब्द का अर्थ– पतित (विद्या आदि से) हताश, पराभूत, पराजित आदि होता है। उस समय कर्म वा विद्या की दृष्टि से ऐसा ही था। बेचारा हताश, निराश व नितान्त अनपढ़ था। धीरे-2 यह शब्द 'गाली' का रूप हो गया होगा। गाँधी को यह शब्द बुरा लगा, तो सम्मानजनक शब्द 'हरिजन' का नवीन आविष्कार किया, परन्तु डॉ. अम्बेडकर ने इसे भी अच्छा नहीं माना, बल्कि उपहासजनक बताकर 'दलित' शब्द स्वीकार किया। तब 'हरिजन' शब्द बुरा हो गया। आज ये सभी शब्द बुरे समझे जाते हैं और 'वाल्मीकि' यह नया शब्द प्रयोग किया जा रहा है। इसका आशय है कि शब्द विशेष प्रयोग करने की शैली, तत्कालीन परिस्थिति तथा प्रयोक्ता की भावना से अच्छा व बुरा हो सकता है। इस कारण उस समय ऋषि का प्रयोग बुरा नहीं था। इसी प्रकार 'चमार' शब्द 'चर्मकार' का अपभ्रष्ट रूप है। 'चमार' भी उस समय अनपढ़ तथा चमड़े का ही धन्धा करने वाला होता था। लोहे का जो सम्बन्ध लुहार, सोने का सुनार, कुम्भ का कुम्भकार से है, वैसा ही सम्बन्ध चमड़े का चमार से है।

वस्तुतः भाषा देश, काल व परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है, यह किसी भी भाषा का इतिहास बताता है। पहले शौचालय को टट्टीघर एवं पाखाना कहते थे, तब यह शब्द बुरा नहीं था, परन्तु अब कोई ऐसा कहे, तो लोग उसे गँवार कहकर हँसेंगे। भाषा ने अंग्रेजी रूप लिया और शौचालय को टॉयलेट, फिर बाथरूम कहने लगे। भाषा फिर बदली, अब बाथरूम को वॉशरूम कहने लगे और देखिये, चमत्कार अब इसे रेस्टरूम कहने लग गये हैं। इस कारण पुराने शब्दों को लेकर आलोचना करना उचित नहीं हैं। हाँ, अब ये शब्द अच्छे नहीं माने जाते, तो इनका प्रयोग करना उचित नहीं है। हाँ, प्राचीन ग्रन्थों में वर्तमान भाषा के अनुकूल परिवर्तन किया गया,

तब सभी ग्रन्थों का स्वरूप न केवल बदल जायेगा, अपितु भाषा का इतिहास ही समाप्त हो जायेगा। यदि ऐसा किया गया तो लोगों को अपने पूर्वजों के नाम ही बदलने पड़ सकते हैं।

भूतप्रेत विषय में सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं- 'उसका औषधि सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल-कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा-धागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बांधते-बंधवाते फिरते हैं।'

इसमें पाखण्डी व ठगों को ऐसा लिखा क्यों अनुचित लगा है? भंगी, चमार शब्दों पर लिख चुका हूँ। 'चमार' शब्द उस समय बुरा नहीं था और न इसका अर्थ ही बुरा है, परन्तु इसे हेय समझा जाने लगा और आज जाटव, मेघवाल, रैगर व जटिया आदि अनेक नाम प्रचलित हो गये। इस शब्द का प्रयोग डॉ. अम्बेडकर ने भी किया है, तब उन्हें कोई बुरा क्यों नहीं कहता? यहाँ ऋषि का आशय यह है कि कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति भूतप्रेत, जो रोग विशेष वा पाखण्ड है, के विषय में नितान्त अनपढ़, धूर्त और ठगों का विश्वास करता है और चिकित्सा नहीं करवाता, तब ऋषि ने ऐसा लिखा है, तो अनुचित क्या है? यदि आप किसी बौद्धिक कार्य में विद्वानों की सलाह नहीं मानकर शूद्र अर्थात् अपने श्रमिक वा अन्य किसी धूर्त पर विश्वास करें, तो क्या यह आपके लिए भी उचित रहेगा? तब आपके पास महर्षि की आलोचना करने का क्या आधार है?

ध्यान रहे कि ऋषि दयानन्द ने किसी वर्ण को नीच, धूर्त आदि शब्दों से सम्बोधित नहीं किया है, बल्कि जो लोग ठगी करते व लोगों को भ्रमित करते हैं, उनके लिए ही ऐसे कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। पाठक! देखिये, उन्होंने तत्कालीन ब्राह्मण, जो वास्तव में कर्म से ब्राह्मण नहीं थे, के लिए सत्यार्थ प्रकाश में लालभुजक्कड़, निपट अन्धे, गर्भ में ही क्यों न मर गये,

अन्धे पोप, गपोड़ा, जैसे कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। ब्राह्मणकुल में जन्म लेने वाले ऋषि ने नकली अर्थात् जन्मना ब्राह्मणों को किस प्रकार फटकारा है, यह कोई विचार करके तो देखे। वस्तुतः ऋषि दयानन्द से बढ़कर पिछले कुछ हजार वर्ष में भारत में कोई सच्चा मानवतावादी जन्मा ही नहीं।

* * * * *

उपसंहार

पाठक अब तक इस पुस्तक को पढ़कर समझ चुके होंगे कि वेद एवं ऋषियों के ग्रन्थ न केवल समस्त मनुष्य जाति, अपितु प्राणिमात्र के हित के लिए ही उपदेश करते हैं। इनको न समझने के कारण संसार में विशेषकर भारतवर्ष में अनेक दुःखद समस्याओं का जन्म हुआ है। वस्तुतः इन समस्याओं का जन्म नितान्त अज्ञानतावश ही नहीं, अपितु कुछ धर्मद्वेषी और भारतविरोधी लोगों ने भी ऋषियों के ग्रन्थों में मिलावट करके एवं ऋषियों के नाम से कल्पित ग्रन्थ रचकर एक वर्ग विशेष को बहुत अधिक प्रताड़ित किया है और उनका यह बीभत्स खेल सैकड़ों नहीं, अपितु हजारों वर्षों तक चला है। इसको देखकर ही भारत के अनेक सुपठित व्यक्ति और एक बहुत बड़ा वर्ग अपने-अपने नेताओं को आदर्श मानकर वेदों और ऋषियों का घोर विरोधी बन गया है।

आज का कथित दलित वर्ग डॉ. भीमराव अम्बेडकर को प्रमाण मानता है, जबकि डॉ. अम्बेडकर स्वयं को ऋषियों के ग्रन्थों का ज्ञाता नहीं मानते। उन्होंने अनेकत्र वर्णव्यवस्था की प्रशंसा की है और जहाँ भी उन्होंने इसकी आलोचना की है, वहाँ उन्होंने मनुस्मृति के विदेशी विद्वानों द्वारा किये गए अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर की है। वस्तुतः वर्णव्यवस्था के यथार्थ स्वरूप को पिछले लम्बे कालखण्ड में ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त कोई भी उचित ढंग से नहीं समझ पाया।

हम मनुस्मृति के सभी आलोचकों से आग्रह करेंगे कि वे सभी पूर्वाग्रहों और स्वार्थों को त्यागकर इस पुस्तक को शान्त मन से कई बार पढ़ें। यदि उनके आत्मा को इस पुस्तक में निष्पक्षता प्रतीत होती हो, तो वे डॉ. सुरेन्द्र कुमार द्वारा लिखित निम्न साहित्य को अवश्य पढ़ें—

1. मनुस्मृति
2. विशुद्ध मनुस्मृति

3. मनु का विरोध क्यों?

4. महर्षि मनु बनाम डॉ. अम्बेडकर।

मुझे आशा है कि भारत के सभी सुधीजन सम्पूर्ण मानवजाति की रक्षा, विशेषकर भारत की राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लिए सत्य मार्ग पर ही चलेंगे और सभी मिलकर इस राष्ट्र को पुनः महान् बनाने का व्रत लेंगे। इसी आशा के साथ...

* * * * *

आरक्षण, जातिवाद व निर्धनता का स्थायी सर्वोत्तम समाधान

दु:ख को छोड़ना और सुख को पाना प्राणिमात्र चाहता है। मानवेतर प्राणी अपनी भूख को शान्त करने हेतु दुर्बल प्राणी को मारकर खा भी जाते हैं, परन्तु ऐसा ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार ही होता है। संसार का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य ईश्वरीय मर्यादा को भूलकर केवल अपने मनोरंजन व इन्द्रिय लोलुपतावश दूसरों को सताने का पाप करता रहता है। काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, अहंकार के वशीभूत मानव ने इस संसार में कितने-2 भयंकर क्रूर कर्म किये हैं? आज यह सर्वोत्तम कहाने वाला प्राणी मानव दूसरों की टूटी-फूटी झोंपड़ियाँ जलाकर स्वयं भव्य भवनों में विलास करना चाहता है, अपने ही दु:खी निर्धन भाई के हाथ से सूखी रोटियाँ भी छीनकर स्वयं स्वर्ण पात्रों में सुन्दर, सरस व सुस्वादु भोजन करना चाहता है, दूसरे भाइयों के तन से जीर्ण-शीर्ण वस्त्र भी खींच कर बहुमूल्य वस्त्रों से फैशन की ललक पूरी करना चाहता है, दूसरों का गला काटकर स्वयं अमर एकाकी जीवन जीना चाहता है।

प्राचीन वैदिक काल में 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास:, ईशावास्यमिदं सर्वम्....तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:, सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना के अनुसार सभी मानव परस्पर भाई-भाई का व्यवहार करते हुए कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था की सुन्दर तथा सर्वहितकारी मर्यादा में रहा करते थे। परस्पर सहयोग, सद्भाव, करुणा, प्रेम का सुन्दर शान्तिमय वातावरण था। कालगति से महाभारत के उपरान्त वह सुन्दर वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित क्रूर जाति-व्यवस्था में बदल गयी, जिसने इस विश्व विख्यात देश को अन्धकार, दु:ख, दरिद्रता, अविद्या, वैमनस्य, चरित्रहीनता व पराधीनता के गहन गर्त में धकेल दिया। यह सब पाप वेद, मनुस्मृति एवं प्राचीन ऋषियों के नाम पर हुआ। उनके ग्रन्थों में पापपूर्ण प्रक्षेप, वेद की मनगढ़न्त दूषित व्याख्यायें इन सब पापों की पोषक बनीं। इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र जन्म के आधार पर माने जाने लगे तथा इस व्यवस्था में जन्मना शूद्र वर्ग व महिलाओं पर बीभत्स अत्याचार हुये।

इससे वे अति निर्धन, अस्पृश्य व दासवत् जीवन जीने को विवश हुए।

उन्नीसवीं सदी में कई समाज सुधारकों ने इस पाप के विरुद्ध आन्दोलन चलाये, परन्तु प्राचीन वैदिक वर्णव्यवस्था का शुद्ध स्वरूप फिर से लाने का प्रयास नहीं हो सका। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद एवं मनुप्रोक्त वैदिक वर्ण-व्यवस्था का शुद्ध एवं सर्वहितकारी स्वरूप भारत के समक्ष लाने का भारी पुरुषार्थ किया और इसी आधार पर उन्होंने गुरुकुलों में सबको समान शिक्षा, समान भोजनादि व्यवस्था से जातिभेद व छुआछूत मिटाकर हजारों दलित कहाने वाले भाइयों को वेदपाठी ब्राह्मण व सर्वपूज्य संन्यासी बनाया। दुर्भाग्य से देश के नेता व समाजशास्त्री इस व्यवस्था को समझ नहीं पाए। कुछ ने तो छुआछूत व जातिभेद का दोष ही वैदिक वर्ण व्यवस्था के सिर पर मढ़ दिया। अंग्रेजी शिक्षा से पढ़े-बढ़े कथित विद्वानों व नेताओं से वैदिक संस्कृति के वास्तविक ज्ञान की आशा की ही कैसे जा सकती है? देश अन्ततः अंग्रेजों से स्वतन्त्र हुआ, परन्तु अंग्रेजी शिक्षा, सभ्यता व विचारों का और भी भयंकर रूप से दास बन गया।

उस समय दलित वर्ग के नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर, जो स्वयं जातिगत भेदभाव व छुआछूत के दंश का दारुण दुःख भोग चुके थे, ने देश के उन करोड़ों जन्मना शूद्रों (दलितों) की दयनीय दशा को देखकर उन्हें कुछ सम्बल प्रदान करने हेतु दया व सद्भावनावश दस वर्ष के लिये आरक्षण व्यवस्था को लागू किया। यद्यपि सिद्धान्ततः वे इसे दलितोद्धार का स्थायी समाधान नहीं मानते थे तथा महात्मा गाँधी, पण्डित नेहरू इस नीति के विरुद्ध थे, पुनरपि दस वर्ष के लिये यह व्यवस्था लागू की गयी। यद्यपि डॉ. अम्बेडकर की शिक्षा व जीवन के विकास में आर्य समाज से प्रभावित बड़ौदा व कोल्हापुर के नरेशों ने महती भूमिका अदा की, पुनरपि डॉ. अम्बेडकर दलितोद्धार के कार्य में आर्यसमाज के विचारों व कार्यों का कोई उपयोग नहीं कर पाये। मैं यह मानता हूँ कि डॉ. अम्बेडकर ने उस आरक्षण व्यवस्था को अपने राजनैतिक स्वार्थवश लागू नहीं किया, बल्कि वे वास्तव में दलितों के प्रति सद्भावना

रखकर उन्हें सम्मानित जीवन प्रदान करना चाहते थे। खेद है कि प्रथम पीढ़ी के राजनेताओं के पश्चात् देश के नेताओं ने आरक्षण को दलित हित का बहाना बनाकर अपने वोट का हथियार बना लिया और अंग्रेजों की 'फूट डालो-राज करो' की नीति को ही अपनाया। यदि उन राजनेताओं में दलितों के हित की जरा भी भावना होती, तो वे दस वर्ष के बाद आरक्षण व्यवस्था की समीक्षा करके यह देखते कि कितने दलितों को इससे लाभ हुआ और कितने इससे वंचित रहे? वे यह भी देखते कि इससे देश की प्रतिभाओं के साथ कोई अन्याय तो नहीं हुआ?

जिन दलितों का जीवन स्तर सामान्य हो गया था, उन्हें आरक्षण के लाभ से मुक्त करके अन्य नारकीय जीवन जीने वाले दलितों को इसका लाभ देते हुए यदि वे प्रति पाँच वर्ष बाद समीक्षा करते, तो अब तक कोई दलित गरीब रहता ही नहीं और सही अर्थों में कहें तो कोई दलित, दलित (दबा हुआ, शोषित) रहता ही नहीं, परन्तु ऐसा करने से चतुर नेताओं को वोट का उतना लाभ नहीं मिलता और न आरक्षण का लाभ उठाने वाले अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी को सर्वदा के लिये अधिकतर सम्पत्ति सम्पन्न बना पाते।

दुर्बल गरीब कभी आन्दोलन नहीं करता, बल्कि वह अपने नेताओं विशेषकर अपने ही वर्ग के अमीरों का मुहरा बनकर अपनी हानि ही करता है। इस प्रकार दलित के साथ किसी ने सच्चा न्याय नहीं किया। विश्वनाथ प्रतापसिंह के शासन में मण्डल कमीशन की सिफारिशें लागू करके देश के नेताओं ने अपने स्वार्थ के लिये अनेकों युवकों को जीवित जला डाला, परन्तु किसी भी राजनैतिक दल की आँखों में एक बूँद आँसू नहीं आया। उसके पश्चात् सारे देश में जातीय वैमनस्य की आग तेजी से फैलती रही और नेता लोग तमाशा देखते रहे। जाति के नाम पर संगठन, सेनाएँ, विद्यालय, धर्मशालाएँ, छात्रावास, मन्दिर बन रहे हैं। ईश्वर को भी जातियों में बाँट दिया है। वोटों में जातिवाद सबसे बड़ा मुद्दा होता है। लाभ चन्द नेताओं व चतुर लोगों को होता है और नीचे तक के सभी लोग परस्पर अनावश्यक वैमनस्य

की आग में जलते हैं। आरक्षण के लिए लड़ने वाले कहीं रेल की पटरियाँ उखाड़ देते हैं, कहीं बसों व रेलों में आग लगाकर राष्ट्रीय सम्पत्ति को स्वाहा कर देते हैं। वे ऐसा करना अपना अधिकार समझते हैं। वे इतना भी नहीं सोचते कि यह देश किसी वर्ग विशेष का तो नहीं है। इस पर सबका साझा अधिकार है, इसकी सम्पत्ति सबके उपयोग के लिये है, तब इसे जलाने, उजाड़ने का किसे अधिकार है? यदि सभी वर्ग इसी प्रकार करने लगें, तब देश का क्या होगा?

यह सत्य है कि लोकतन्त्र में सबको अपनी माँग करने का अधिकार है, परन्तु जातीय नेता इसके लिये तोड़-फोड़ कराते रहें, देश व राज्य को बन्धक बना लें, देश व राज्य के आन्दोलनकारियों की अपेक्षा कई गुने बड़े जनसमूह को त्रस्त करें, पुलिस गोली चलाने को विवश हो और युवा मरते रहें, विपक्षी राजनैतिक दल तमाशा देखते रहें, तो कोई आरक्षण के पक्ष वा विपक्ष में भड़काऊ बयान देकर आग में घी डालते रहें, यह सब इस देश को कब तक जीवित रख पायेगा? इस देश में एक ऐसा खतरनाक विदेशी षड्यन्त्रकारी संगठन भी है, जो कथित सवर्णों को विदेशी बताकर शेष भारतीयों को गैर हिन्दू व देश का मूल निवासी कहकर भावी गृह युद्ध की तैयारी में जुटा है। जिसकी योजनाएँ गुप्त हैं, जिसकी जानकारी गुप्तचर एजेन्सियों को भी नहीं है।

शोक है कि इस देश में वर्गविहीन सामाजिक समरसता की स्थापना हेतु आरक्षण आदि की अस्थायी व्यवस्था की गयी थी, उसी कुव्यवस्था ने देश में सामाजिक वर्ग-संघर्ष की आग लगा दी है। जन्म के आधार पर विघटनकारी व अन्यायपूर्ण, जो जाति व्यवस्था मध्यकाल में थी, वही आज भी है, बस क्रम उलट गया है। जन्म, मृत्यु, विद्यालय, चिकित्सालय, छात्रावास, बैंक सर्वत्र जाति पूछी जाती है। कोई सरकारी कार्य बिना जाति पूछे व लिखे नहीं होता है। शोक है कि इस अभागे देश में कोयले की कालिख मिटाने हेतु साबुन के स्थान पर कोयलों को ही घिसा जा रहा है। आज इस

देश में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध जैन, पुनः ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, जाट, यादव, गुर्जर, लोधे, कुर्मी, रेबारी, प्रजापत, घांची, चारण, विश्नोई, मेघवाल, जाटव, वाल्मीकी, भील, मीणा आदि कहाने वाले करोड़ों हैं, परन्तु सारे भारत में एक भी भारतीय कहाने वाला दिखाई नहीं देता, तब मानव का पुतला तो कहाँ से आयेगा? परमात्मा ने तो सबको मानव बनाया था, परन्तु यह मानव न बनकर पता नहीं क्या-क्या बन गया? इसने तो परमात्मा को भी जातियों में बाँट दिया।

काश! इस देश का नागरिक मानव न सही, भारतीय तो बन जाता, तो आज हमारा देश जाति और मजहबी आग में यों जल नहीं रहा होता, परन्तु देश की राजनीति भारतीयों के हित के लिये नहीं है, बल्कि चन्द राजनेताओं के लिये है। आप सोचेंगे कि समस्या को बताने मात्र से काम नहीं चलेगा, अपितु उसका समाधान भी करना होगा।

सुधी पाठकगण! मैं इसका पूर्ण व सर्वमान्य समाधान तो बताऊँगा ही, परन्तु उससे पूर्व आपसे जानना चाहूँगा कि अब तक की आरक्षण व्यवस्था का परिणाम क्या रहा है? आज जब मैं महानगरों की झुग्गी-झोंपड़ियों, फुटपाथों आदि में लाखों दीन-दुःखियों, जिनकी आँतें भूख से सूख चुकी हैं, को नारकीय जीवन जीते देखता हूँ। देहाती क्षेत्रों में आज भी अनेक मेघवाल, पाऊआ, जोगी, नट, सपेरे, सफाई कर्मियों, भील, गरासिया आदि की दयनीय दशा को देखता हूँ, (इनमें जाटव वा मेघवालों में से तो कुछ विकसित भी हुए हैं) तो सोचता हूँ कि क्या इन दलित कहाने वालों के लिये कोई आरक्षण व्यवस्था नहीं है? कथित पिछड़े वर्ग में कुछ समुदाय एकता की लाठी के बल पर आरक्षण पा चुके हैं।

आश्चर्य है कि जो आरक्षण दया भावनावश सुविधा मात्र था, वह आज मूछों व पगड़ी की पहचान बन गया है। पहले वीरता की पहचान स्वयं को उच्च कहलाने में थी, उसी में पगड़ी व मूछों की शान थी, परन्तु आज स्वयं को पिछड़ा व दलित कहाने हेतु देश की व्यवस्था को ठप करने में शान समझी

जाती है। पहले माँगना बुरा समझा जाता था, परन्तु आज यह अधिकार समझा जा रहा है। आज आई.ए.एस. अधिकारी से लेकर राष्ट्रपति बनने पर भी दलित व पिछड़े का अभिशाप नहीं छूट पा रहा है। ऐसे ही लोग जातीय आरक्षण की आग को बढ़ावा देते हैं। यदि कोई आर्थिक आधार पर आरक्षण की माँग करता है, तो ये गरीबों, मजदूरों, किसानों, छात्रों को जाति के नाम पर भड़काकर उपद्रव खड़ा कर देते हैं। गरीब, दलित व पिछड़े बेचारे जानते ही नहीं हैं कि उनके नेता उनके हित के लिये नहीं, बल्कि अपनी सन्तानों व पीढ़ियों के स्वार्थवश आर्थिक आधार पर आरक्षण का विरोध करते हैं।

क्रीमीलेयर को आरक्षण देने की माँग क्या देश में करोड़ों गरीब दलितों, पिछड़ों, किसानों, मजदूरों, अल्पवेतन भोगी कर्मचारियों के हित के लिये है अथवा उनके नाम पर आरक्षण की वकालत कर इनमें से बने अमीरों, नेताओं व उच्च अधिकारियों के स्वार्थ के लिये है? आरक्षण के लाभ से उच्च पदों पर आसीन ये जातीय नेता जानते हैं कि यदि आर्थिक आधार पर आरक्षण व्यवस्था लागू हो गयी, तो आरक्षण का लाभ दीन-हीन व झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले लोग, मजदूर, किसान, गरीब ले जायेंगे और उनकी सन्तानों को इसका लाभ नहीं मिलेगा और वे गरीब भी शीघ्र सम्मानजनक जीवन जीने लगेंगे, फिर उनकी नेतागिरी कैसे चलेगी?

जरा सोचें कि कोई दलित वा पिछड़ा नेता क्या गरीब भी है? कोई अधिकारी क्या गरीब है, तब वे क्यों आर्थिक आधार पर आरक्षण को स्वीकार करेंगे? आज जिन्हें पाँच सितारा होटलों की सुविधाएँ सन्तुष्ट नहीं कर पाती, जो अपने जन्मदिन पर अरबों रुपयों की वसूली करते तथा जो अपने जीते जी अपनी ही मूर्तियों का अनावरण स्वयं करके करोड़ों रुपये बहायें, वे भी स्वयं को दलित बताकर दलितों के हित की बात करें, यह इस अभागे देश में ही सम्भव है। यह करोड़ों दलितों वा गरीबों के साथ क्रूर मजाक है। सत्ता उनके हाथ में है, गरीब के हाथ में तो वोट है, जिसे देना कहाँ है, वह बेचारा यह भी नहीं जानता। जाति के नाम पर भावुक होकर वोट देता जाता है और नरक में

पड़ा रहना ही उसके भाग्य में है। आज इस जातीय आरक्षण व्यवस्था ने देश में दलितों में दलित व पिछड़ों में पिछड़े पैदा कर दिये हैं। वर्तमान विवेकहीन आरक्षण व्यवस्था में परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले भी चयनित हो जाते हैं और अति उच्च योग्यता वाले चयनित सवर्ण रह जाते हैं। न केवल अनुत्तीर्ण, अपितु शून्य अंक वाले भी विज्ञान, गणित जैसे विषयों के अध्यापक बन जाते हैं। जरा विचारें! कि ऐसे शिक्षक क्या पढ़ायेंगे? उनसे पढ़ने वाले देश के कितने बच्चों का भविष्य नष्ट होगा? उन नष्ट भविष्य बच्चों में से कितने बच्चे आरक्षित वर्ग वाले भी होंगे, तब इन चालक, स्वार्थी नेताओं ने एक व्यक्ति को लाभ दिलाने के लिये हजारों जीवन बलिदान कर दिये। इसी प्रकार अयोग्य डॉक्टर, इंजीनियर, अन्य अधिकारी आदि बनने से देश को विनाश की आग में झोंककर राजनैतिक रोटियाँ सेंकी जा रही हैं।

पाठकगण! अब मैं संक्षेप में सभी समस्याओं के समाधान हेतु दो उपाय बताता हूँ। प्रथम यह कि सभी प्रकार की आरक्षण व्यवस्था को पूर्णतः तत्काल प्रभाव से समाप्त करके देश के सभी क्षेत्रों व सभी वर्गों का ईमानदारी से आर्थिक सर्वेक्षण होवे। जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीने वाले हैं, उनको ही आरक्षण का लाभ मिले। इस देश में गरीब व अमीर दो ही वर्ग माने जायें, परन्तु विशेष योग्यता वाले पदों पर आरक्षण न देकर गरीब को पढ़ने व बढ़ने हेतु सुविधाएँ मिलें, क्योंकि गरीब कभी भी धनी तो क्या, सामान्य स्तर की सुविधा पाने वालों से भी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता।

यह भी ध्यातव्य है कि देश के निर्धन वर्गों वा व्यक्तियों के सर्वेक्षण के समय इस बात की भी जाँच की जावे कि वे निर्धन क्यों हुये हैं? कई बार देखा जाता है कि कामचोरी, आलस्य, प्रमाद, नशाखोरी, जुआ, फिजूलखर्ची, अधिक सन्तान पैदा करके अपने वोट बढ़ाने तथा फिर संख्या के बल पर अधिकारों के लिये संघर्ष करने की भावना रखना आदि दोष भी निर्धनता के कारण होते हैं। अल्पसंख्यक, विशेषकर मुस्लिम वर्ग में सन्तानों व पत्नियों की बहुलता एक आम रोग है, जिसे वे मजहबी कारणों से उचित मानते हैं। ऐसे

सभी कारणों को दूर करने के उपाय साम, दान, दण्ड, भेद आदि सभी विधियों से करने का यत्न किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति सुधार का विरोध करें, उन्हें कोई भी राजकीय सहायता नहीं दी जानी चाहिये। यदि वे लोग इन दोषों के साथ जनसंख्या वृद्धि करके राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को चुनौती देने की भावना रखते हों, तो उन्हें तत्काल कड़ा दण्ड देना चाहिये। हमें अपने इतिहास की भूलों व गौरव दोनों से ही शिक्षा लेकर राष्ट्र को सशक्त, अखण्ड व समृद्ध बनाने का प्रयास करना चाहिए।

इससे भी उत्तम, बल्कि सर्वोत्तम स्थायी उपाय यह है कि देश में अनिवार्य शिक्षा लागू होवे। जो माता-पिता बच्चों को नहीं पढ़ायें, उन्हें दण्ड मिले। अति गरीब माता-पिता, जो बालकों की भीख व मजदूरी पर ही आश्रित हैं, उन्हें वृद्धावस्था पेंशन वा वृद्धाश्रम की सुविधा मिले। राष्ट्रपति से लेकर गरीब, भिखारी, दलित, पिछड़ा, सवर्ण, उद्योगपति सभी के बच्चों के लिये सर्वत्र एक समान सुविधा वाले विद्यालय होवें। सब छात्रों का खान-पान, रहन-सहन समान होवे। निजी रूप से किसी भी छात्र को कुछ भी सुविधा पाने का अधिकार नहीं हो। निजी शिक्षण संस्थान व निजी छात्रावासों पर पूर्ण प्रतिबन्ध होवे। किसी भी सरकारी कार्य में जन्मना जाति का कोई भी स्थान न हो। वर्तमान में सर्वशिक्षा तथा पोषाहार के नाम पर शिक्षा-व्यवस्था का सर्वनाश कर डाला है। केवल साक्षर करने वा इसके भी फर्जी आँकड़े भरने व पोषाहार चोरी करने हेतु विदेशों से भीख माँग-माँग कर देश के कर्मचारी व नेता पूँजीपति बनते जा रहे हैं, जो गरीब बच्चों के ग्रास को भी छीनकर क्रूर अपराध कर रहे हैं।

हा हन्त! परन्तु मनु प्रणीत व्यवस्था में ऐसा नहीं होगा। फिर विद्यालयों से निकलकर योग्यतानुसार काम मिले। तब गरीब-अमीर, पिछड़ा-दलित-सवर्ण का भेदभाव समाप्त हो जायेगा। कोई भी आरक्षण की माँग नहीं कर सकेगा। नेताओं को उपद्रव कराने का अवसर नहीं मिलेगा। कोई पूछेगा कि इतना व्यय शासन कैसे करेगा, उसका उत्तर यह है कि जब माता-पिता को

बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा आदि की चिन्ता से मुक्ति मिल जायेगी, तो वे प्रसन्नता से शासन को कर देंगे। कर व्यवस्था चुस्त हो। आज शीर्ष उद्योगपतियों का लाखों-करोड़ों रुपयों का ऋण माफ कर दिया जाता है, यह राष्ट्रविरोधी पाप तत्काल बन्द करके उन पर कर को और अधिक बढ़ाकर इस सम्पूर्ण व्यवस्था को सहजता से लागू किया जा सकता है। सारे देश में केवल भारतीय और उससे भी आगे बढ़कर मानव ही दिखाई देंगे। जातीय व साम्प्रदायिक संघर्ष बन्द हो जायेंगे। गरीब व अमीर का भेद समाप्त होकर अनेक प्रकार के आतंकवाद से भी मुक्त होकर यह राष्ट्र एकता, अखण्डता, समरसता, सुख, समृद्धि एवं विद्या बल से विश्व में एक महाशक्ति बन सकेगा। सबकी पगड़ी व मूँछों का सम्मान बचेगा। देश का गौरव बढ़े, यह पुनः जगदगुरु व चक्रवर्ती देश बने, इसके लिये प्रत्येक देशवासी को उठने की आवश्यकता है। देश बचेगा, तो सब बचेंगे और देश मर गया, तो सब मिट जायेंगे।

आयें, हम अपने धर्म व कर्त्तव्य को समझ कर इस देश को पुनः महान् बनायें।

* * * * *

मैं वैदिक भौतिकी के पुनरुत्थान जैसे इस महान् कार्य में किस प्रकार सहयोग कर सकता हूँ?

1. **सोशल मीडिया पर प्रचार करके** - हमारी पोस्ट, वीडियोज् वा लेख आदि को विभिन्न सोशल मीडिया पर अधिक से अधिक प्रचारित कर सकते हैं।

2. **स्वयं आर्थिक सहयोग करके एवं दूसरों से करा कर** - आप अपने सामर्थ्य के अनुसार एवं न्यास की 'अनैतिक व्यवसाय से अर्जित धन न लेने की शर्त' को ध्यान में रखते हुए दान दे सकते हैं और अपने सगे-सम्बन्धियों को भी इस राष्ट्रीय एवं वैदिक यज्ञ में आहुति देने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

3. **हमारे साहित्य का प्रचार करके** - आप पूज्य आचार्यश्री की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा सकते हैं।

4. **वैदिक भौतिकी पर कार्यक्रम आयोजित करा कर** - हमसे सम्पर्क करके अपने आसपास अति प्रबुद्ध, विशेषकर विज्ञान के उच्च स्तरीय छात्रों के मध्य कार्यक्रम करा सकते हैं।

5. **सोशल मीडिया, पत्रिका आदि में हमारे कार्य पर लेख लिखकर अथवा वीडियो बनाकर** - हमारे कार्य को अच्छी तरह से समझकर विभिन्न विषयों पर सरल भाषा में जनसाधारण के लिए सोशल मीडिया एवं पत्रिका आदि में लेख लिख सकते हैं अथवा वीडियो बना सकते हैं।

6. **बौद्धिक सहयोग देकर** - नए मौलिक अनुसंधानों की जानकारी अथवा हमारे अनुसंधान कार्य को आगे बढ़ाने हेतु सुझाव हमें मेल द्वारा दे सकते हैं।

7. **सरकारी सहायता के लिए प्रयास करके** - हमारे कार्य की जानकारी

भारत सरकार तक पहुँचाकर उनसे इस कार्य के लिए सहयोग और संरक्षण का निवेदन कर सकते हैं।

8. **हमारे वेदविज्ञान के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचकर** - भारत और विश्व को वेदोक्त आदर्शों पर चलाकर सम्पूर्ण मानवजाति के साथ-साथ प्राणिमात्र के कल्याण के लिए अपने जीवन के दोषों को त्यागकर और किसी अच्छाई को अपनाकर।

9. **वैदिक भौतिकी पर तकनीक एवं गणित का विकास करके** - हमारे वैदिक सैद्धान्तिक भौतिकी को जनोपयोगी बनाने के लिए इसके आधार पर तकनीक एवं गणित का विकास करने का प्रयास करके।

10. **वेद विरोधियों अथवा जिज्ञासुओं को उत्तर देकर** - वेदादि शास्त्रों पर हो रहे मिथ्या आक्षेपों अथवा वास्तविक जिज्ञासुओं को, जो भी आपने अब तक समझा है, के आधार पर उत्तर देकर आचार्य श्री का बहुमूल्य समय बचा सकते हैं।

* * * * *

विनम्र निवेदन

मान्यवर! आपने आचार्य जी के कार्य और महत्ता को भली प्रकार समझ लिया होगा, ऐसी आशा करते हैं। यदि आपके हृदय और मस्तिष्क वेद के इस अपूर्व कार्य के लिए उत्सुक हुए हों और हमें अपना सहयोग करना चाहें, तो आप हमारे यज्ञ में निम्न प्रकार से सहयोगी बन सकते हैं–

1. प्रतिवर्ष न्यूनतम 12,000/– रुपये दान करके ट्रस्ट के **सहयोगी संरक्षक** बन सकते हैं अथवा एक बार न्यूनतम एक लाख रुपये का दान करके आजीवन **सहयोगी संरक्षक** बन सकते हैं।
2. प्रतिवर्ष न्यूनतम 6,000/– रुपये देकर **विशेष आमन्त्रित सदस्य** बन सकते हैं अथवा एक साथ न्यूनतम 50,000/– रुपये देकर **विशेष आमन्त्रित सदस्य** बन सकते हैं।
3. वार्षिक न्यूनतम 1,000/– रुपये देते रहकर **सहयोगी सदस्य** बन सकते हैं।

नोट– उपर्युक्त सभी सहयोगी महानुभावों को न्यास की सी.ए. द्वारा की हुई वार्षिक ऑडिट रिपोर्ट भेजी जाया करेगी। जो महानुभाव स्वयं दान नहीं कर सकें, वे दूसरों को प्रेरित करके कम से कम 8 सदस्य आदि बनाकर स्वयं निःशुल्क उसी श्रेणी के सदस्य वा सहयोगी संरक्षक आदि बन सकते हैं।

4. वयोवृद्ध विद्वान्, संन्यासी, साधु, महान् वैज्ञानिक महानुभाव अपना आशीर्वाद तथा बौद्धिक सहयोग दे सकते हैं।
5. विद्यार्थी, किसान, श्रमिक, व्यापारी आदि अपनी पवित्र आहुति श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार प्रदान कर सकते हैं।

* * * * *

विशेष निवेदन

यह कार्य अत्यन्त पवित्र है, इस कारण आचार्य श्री की भावनानुसार विनम्र निवेदन है कि जिनकी आजीविका किसी भी प्रकार की हिंसा, चोरी, तस्करी, अश्लीलतावर्धक साधनों, नशीली वस्तुओं की बिक्री, धोखाधड़ी, शोषण आदि पर निर्भर हो तथा जो निर्धन भाई अपने सामर्थ्य से अधिक (अथवा अपने परिवार में क्लेश करके) दान देना चाहते हों, ऐसे महानुभावों की सद्भावना का धन्यवाद करते हुए भी हम उनका दान लेने में असमर्थ हैं। कृपया ऐसा करने का प्रस्ताव करके हमें लज्जित न करें। हाँ, जो बन्धु ऐसे कर्मों को त्यागकर हमसे जुड़ना चाहें, तो उनका हार्दिक स्वागत है। संस्थान के संचालन हेतु कृपया इन दो खातों मे दान कर सकते हैं-

Bank Name	**Punjab National Bank**
A/c Holder	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas
A/c Number	4474000100005849
Branch	Bhinmal
IFS Code	PUNB0447400

या

Bank Name	**State Bank of India**
A/c Holder	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas
A/c Number	61001839825
Branch	Khari Road, Bhinmal
IFS Code	SBIN0031180

ज्ञातव्य है कि वैदिक विज्ञान के अग्रिम एवं उच्च स्तरीय विशाल शोध संस्थान हेतु 30 बीघा भूमि सिरोही (राजस्थान) नगर से राष्ट्रीय राजमार्ग- 62 से लगभग सवा कि.मी. दूर पालड़ी (एम) राजस्व ग्राम में क्रय कर ली गई है। इस संस्थान के निर्माण का अनुमानित बजट 10 करोड़ रुपये है। जो महानुभाव इस महान् यज्ञ में अपनी पवित्र आहुति (बड़ी राशि) देना चाहते हैं, वे निम्नलिखित

खाते में धन भेज सकते हैं-

Bank Name	Axis Bank
A/c Holder	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas
A/c Number	921010017739651
Branch	Bhinmal
IFS Code	UTIB0003757

आप अपना चैक/ड्राफ्ट/धनादेश, **'श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास'** PAN No. AAATV7229A के नाम (केवल खाते में देय) भेजने का कष्ट करें, साथ ही अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखकर अवश्य भेजने की कृपा करें। आप ऑनलाइन भी धन जमा करवा सकते हैं, परन्तु ऐसा करने वाले महानुभाव अपना नाम व पता दूरभाष द्वारा तत्काल सूचित करने का कष्ट करें, जिससे समय पर रसीद भेजी जा सके, अन्यथा हमें बहुत कठिनाई होती है।

नोट- न्यास को दिया हुआ दान आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80-जी के अन्तर्गत कर मुक्त है।

* * * * *

आर्य समाज के नियम (मानवधर्म सूत्रदशक)

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ मनुष्यों) का परम धर्म है।

4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।

* * * * *

"काश! यदि आज भगवान् मनु के अनुसार शासन होता, तो देश का हर बच्चा पढ़ रहा होता, कोई भीख नहीं माँग रहा होता, कोई बालश्रम का अभिशाप नहीं भोग रहा होता, कोई गलियों में कचरा नहीं बीन रहा होता, कोई झुग्गी-झोंपडियों में दुःखी जीवन नहीं जी रहा होता, कोई फुटपाथों पर नहीं सो रहा होता, जिसे कोई धन के अहंकार में अन्धा अपनी गाड़ी से रौंद सके।

आचार्य अग्निव्रत

/vaidicphysics